गायत्री साधना और यज्ञ प्रक्रिया

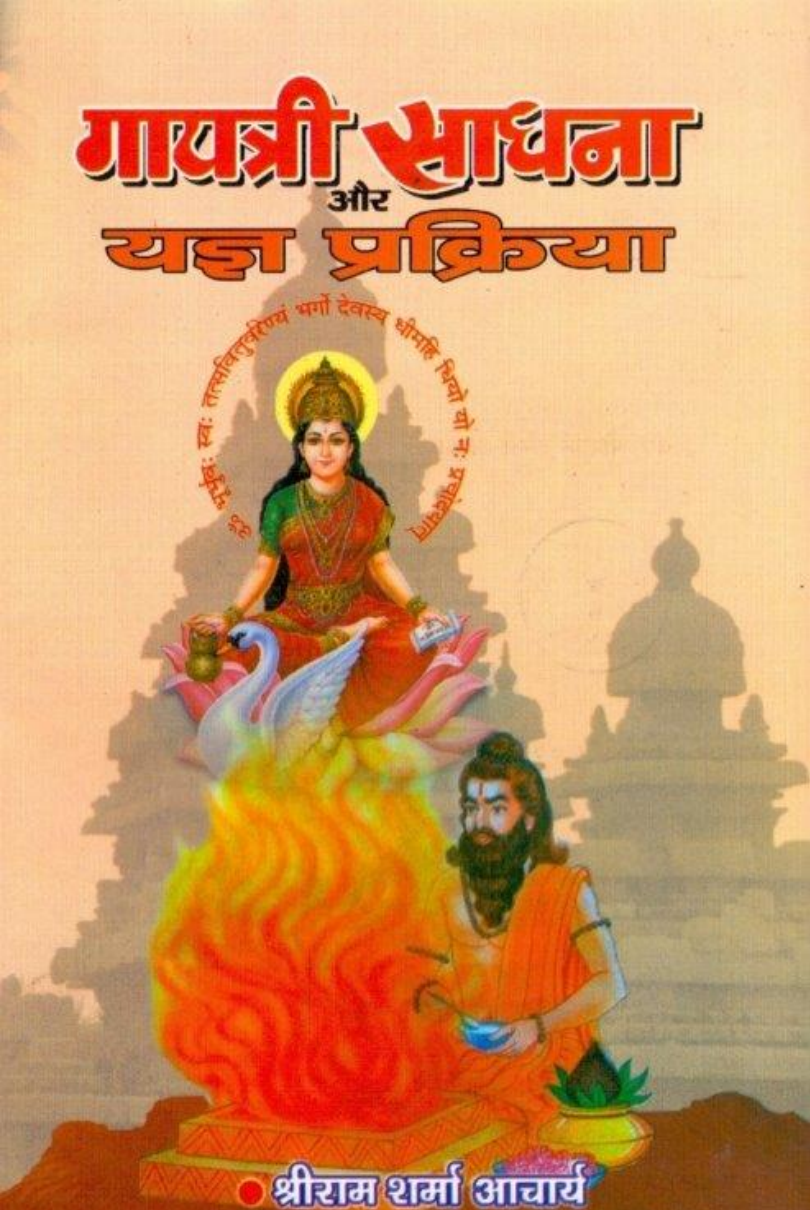

श्रीराम शर्मा आचार्य

यज्ञ की उपयोगिता का वैज्ञानिक आधार

गायत्री उपासना के साथ-साथ यज्ञ की अनिवार्यता शास्त्रों में पग-पग पर प्रतिपादित की गई है । यह तथ्य अकारण नहीं है, अभी तक इस बात को मात्र श्रद्धा का विषय माना जाता था, किन्तु जैसे-जैसे विज्ञान की प्रगति हुई यह पता चलने लगा है कि यज्ञ एक प्रयोगजन्य विज्ञान है, उसे अन्य भौतिक प्रयोगों के समान ही विज्ञान की प्रयोगशाला में भी सिद्ध किया जा सकता है ।

विज्ञान अब इस निष्कर्ष पर पहुँचता जा रहा है कि हानिकारक या लाभदायक पदार्थ उदर में पहुँचकर उतनी हानि नहीं पहुँचाते जितनी कि उनके द्वारा उत्पन्न हुआ वायु विक्षोभ प्रभावित करता है । किसी पदार्थ को उदरस्थ करने पर होने वाली लाभ-हानि उतनी अधिक प्रभावशाली नहीं होती जितनी कि उसके विद्युत आवेग-संवेग ।

कोई पदार्थ सामान्य स्थिति में जहाँ रहता है वहाँ के विद्युत कम्पनों से कुछ न कुछ प्रभाव छोड़ता है और समीपवर्ती वातावरण में अपने स्तर का संवेग छोड़ता रहता है, पर यदि अग्नि संस्कार के साथ उसे जोड़ दिया जाय तो उसकी प्रभाव शक्ति असंख्य गुनी बढ़ जाती है ।

तमाखू सेवन से कैन्सर सरीखे भयानक रोग उत्पन्न होने की बात निर्विवाद रूप से सिद्ध हो चुकी है । इस व्यसन के व्यापक बन जाने के कारण सरकारें बड़े प्रतिबन्ध लगाने से डरती हैं कि जनता में विक्षोभ और विद्रोह उत्पन्न होगा, फिर भी सर्वसाधारण को वस्तुस्थिति से संकेत करने के लिए प्राथमिक कदम तो उठा ही दिये गये हैं । अमेरिका में सिगरेटों के पैकेट पर उनकी विषाक्तता तथा सम्भावित हानि की चर्चा स्पष्ट शब्दों में छपी रहती है । फिर भी जो लोग पीते हैं उनके बारे में यही कहा जा सकता है कि उन्होंने आरोग्य और रुग्णता के चुनाव में बीमारी और अपव्यय के पक्ष में अपनी पसंदगी व्यक्त की है ।

तमाखू से कैन्सर कैसे पैदा होता है इस संदर्भ में जो नवीनतम खोजें हुई उससे नये तथ्य सामने आये हैं ।

शोधकर्त्ताओं द्वारा निष्कर्ष यह निकाला गया है कि तमाखू में रहने वाले रसायन उतने हानिकारक नहीं जितने कि उसके धुएँ के कारण धनात्मक आवेशों से ग्रस्त साँस का लेना । तमाखू का धुआँ भर मुँह से बाहर निकल जाता है सो ठीक, उसके द्वारा शरीर में रहने वाली वायु

पर धनात्मक आवेश भर जाता है । आवेश ही कैन्सर जैसे भयंकर रोग उत्पन्न करने के कारण बनते हैं । धुआँ मुँह से छोड़ देने के बाद उसकी गर्मी और विषाक्तता वातावरण में ऐसे विद्युतीकरण उत्पन्न करती है जिस में साँस लेना भयंकर विपत्ति उत्पन्न करता है । सिगरेट का धुआँ उगलने के बाद साँस तो उसी वातावरण में लेनी पड़ती है । अस्तु तमाखू की विषाक्तता विभीषिका बनकर भयंकर हानि पहुँचाती है । उस हानि से किसी प्रकार भी नहीं बचा जा सकता ।

इनको ही नहीं तमाखू पीने वालों के निकट बैठने वालों को भी उस धुआँ से होने वाली हानि भुगतनी पड़ती है । इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए रेलगाड़ियों में, बसों में यह हिदायत लिखी रहती है कि यदि साथी मुसाफिर को आपत्ति हो तो तमाखू न पियें । कोई स्वयं अपने पैरों कुल्हाड़ी मारे उसकी इच्छा, पर यह छूट दूसरों पर आक्रमण करने के लिए नहीं दी जा सकती । तमाखू के धुएँ से पास बैठे हुए लोगों का स्वास्थ्य बिगड़ना एक प्रकार से अनैतिक और असामाजिक कार्य ही माना जायेगा ।

आक्सीजन की समुचित मात्रा रहने पर ही वायु हमारे लिए स्वास्थ्य रक्षक रह सकती है । यदि उसमें कार्बनडाई आक्साइड गैस अथवा अन्य विषैली गैस बन जाय तो ऐसी वायु जीवन के लिए संकट ही उत्पन्न करेगी । कमरा बन्द करके उसमें जलती अंगीठी रखकर सोया जाय तो आक्सीजन समाप्त होकर कार्बन बन जाने के कारण उसकी सांस बाद कमरे में सोने वालों के लिए प्राणघातक बन जाती है ।

२६ अक्टूबर १९४८ को अमरीका के डोनोरा नगर में एकाएक वायु में धुएँ और विषैले तत्वों के अधिक बढ़ जाने के परिणाम स्वरूप उस दिन दस बजे तक भी सूर्य के दर्शन न हुए तब लोग घरों से बाहर निकले, उनकी साँसें घुटने लगी थीं । बाहर आकर देखा तो धुएँ का कुहरा (स्माग) बुरी तरह छाया हुआ था । २८ अक्टूबर तक धुन्ध सारे नगर में छा गई और यह स्थिति ३१ अक्टूबर तक बनी रही । इस बीच भी कल-कारखाने, कारें, मोटरें, भट्टियाँ १००० टन प्रति घण्टे के औसत से धुआँ बराबर उड़ेलती रहीं । सारा शहर लगभग मृत्यु की अवस्था में पहुँच गया । लोगों की ऐसी दशा हो गई जैसी कि डाक्टर के निजी बयान से व्यक्त है । वे बेचारे स्वयं भी मरीज थे, प्रकृति के सामने आज वे भी बेबस थे और सोच रहे थे कि मानवीय सुख-शान्ति का

आधार यांत्रिक सभ्यता नहीं हो सकती । नैसर्गिक तत्वों के प्रति श्रद्धा और सान्निध्य स्थापित किए बिना मनुष्य कभी सुखी नहीं हो सकता । भौतिक विज्ञान की प्रगति तो वैसी ही गले की फँसी बन सकती है जैसी आज सारे नगर की हो रही है । इस घटना के भुक्त–भोगी एक डाक्टर ने लिखा है ।

'मेरी सोचने की शक्ति समाप्त हो गई । यह क्या हो रहा है । इस पर चकित होने तक के लिए बुद्धि शेष नहीं थी । कार चलाना कठिन हो गया, किसी तरह कार से उतरा तो लगा कि सीने पर कोई दैत्य चढ़ बैठा है और उसने भीतर से जकड़ लिया है । खाँसी आने लगी मुश्किल से कार्यालय मिला, टेलीफोन की घण्टियाँ बज रही थीं और मुर्दे की तरह पास में कूड़े के ढेर की तरह पड़ा रहा, उस दिन एक भी टेलीफोन का उत्तर नहीं दे सका ।"

इन ५–६ दिनों में डोनोरा नगर की १८ हजार की आबादी में ६ हजार अर्थात् एक तिहाई व्यक्ति बीमार पड़ गए थे, सैकड़ों की मृत्यु हो गई । भगवान कृपा न करते और ३१ को भारी वर्षा न होती तो कौन जाने डोनोरा शहर पूरी तरह लाशों से पट जाता ।

१९६६ में "थैंक्सगिविंग" दिवस पर न्यूयार्क में आस–पास के देहाती क्षेत्रों से भी सैकड़ों लोग आ पहुँचे । उस दिन भी यह दशा हुई । कुछ घण्टों में धुएँ के दबाव से ही १७० व्यक्तियों की मृत्यु तत्काल हो गई । हजारों लोगों को पार्टियाँ, नृत्य और सिनेमा घरों की मौज छोड़कर अस्पतालों के बिस्तर पकड़ने पड़े । ऐसी दुर्घटना वहाँ १९५२ में भी हो चुकी थी, उसमें २०० से भी अधिक मृत्यु हुई थीं ।

सन् १९५६ में यही स्थिति एक बार लन्दन की हुई थी उसमें १००० व्यक्ति मरे थे । सरकार ने करोड़ों रुपयों की लागत से रोकथाम के प्रयत्न किए थे, तो भी१९६२ में दुबारा फिर वैसी ही स्थिति बनी और ४०० से अधिक व्यक्तियों की मृत्यु कुछ ही घण्टों में दम घुटकर हो गई । कुछ लोगों ने तो इसे प्राकृतिक आत्महत्या कहा और चेतावनी दी कि यदि धुएँ की समस्या को हल न किया गया तो एक दिन सारा वायुमण्डल विष से भर जायेगा । जिस दिन यह स्थिति होगी उस दिन पृथ्वी की सामूहिक हत्या होगी । उस दिन पृथ्वी पर मनुष्य तो क्या कोई छोटा–सा जीव और वनस्पति के नाम पर एक पौधा भी न बचेगा । पृथ्वी की स्थिति शुक्र ग्रह जैसी विषैली हो जायेगी ।

संसार के विचारशील लोगों का इधर ध्यान न हो ऐसा तो नहीं है किन्तु परिस्थितियों के मुकाबले प्रयत्न नगण्य जैसे हैं । एक ओर जनसंख्या में तीव्र वृद्धि हो रही है उसी अनुपात से कल-कारखाने और शहरों की संख्या भी बढ़ेगी । अनुमान है कि सन् २००० तक अमेरिका की ३२० मिलियन जनसंख्या होगी । इस आबादी का ८५ प्रतिशत शहरों में मरेगा । इस अवधि में कारों और मोटरों की संख्या इतनी अधिक हो जायेगी कि उनको रखने की जगह न मिलेगी । अमेरिका में एक बच्चा पैदा होता है तब तक कारें दो जन्म ले चुकी होती हैं ।

"यूनिवर्सिटी स्टेटवाइड एअर पौल्यूजन रिसर्च सेन्टर" संस्था जो अमेरिका में वायु प्रदूषण से होने वाली हानियों और उनसे बचने के उपायों की शोध करती है, के डायरेक्टर श्री जी. टी. मिडिल्टन के अनुसार एक कार सामान्य रूप से ९०००मील प्रति वर्ष चलती ही है । एक दिन में २५ मील तो वह अनिवार्य रूप से चलती है, उससे ६१/२ पौण्ड वायु दूषण होता है । १९६० में इस राज्य में अकेले कारों से ३७ मिलियन पौण्ड अर्थात् ४६२५०० मन से भी अधिक वायु-प्रदूषण निकला । १९६३ में ५६ मिलियन पौण्ड, १९७० में ८१ मिलियन पौण्ड तथा १९८० में ११२ मिलियन पौण्ड से भी अधिक वायु-दूषण अकेली कार मोटरों ने फैलाया ।

कल-कारखानों से निकल रहे धुएँ की हानियों और भविष्य में हो सकने वाली भयंकरता का चित्रण करते हुए कैलिफोर्निया के टेक्नोलॉजी संस्थान के भू-रसायन शास्त्री डा. क्लेअर सी पैटरसन और स्वास्थ्य सेवा निर्देशक डा. राबर्ट ई. कैरोल ने लिखा है कि टेक्नालॉजी के विस्तार से वायु में कार्बन और सीसे के कणों की मात्रा इतनी अधिक बढ़ जायेगी कि अमेरिका का हर व्यक्ति हृदय तन्त्रिका संस्थान (नर्वस शिर सिस्टम) के रोग से पीड़ित अर्थात् लोग लगभग पागलों जैसी स्थिति में पहुँच जायेंगे ।"

२००० तक विद्युत का उपयोग ५ गुना बढ़ जायेगा । जिसके कारण वायु-प्रदूषण ५ गुना बढ़ जायेगा । जनसंख्या वृद्धि का अर्थ रहन-सहन की वस्तुओं में वृद्धि होगी, और उससे कूड़े की मात्रा भी निस्सदेह बढ़ेगी । उस बढ़ोत्तरी को न तो आक्सीजन का उत्पादन रोक सकेगा, न पेड़-पौधे, क्योंकि वह स्वयं भी जो विषैले तत्वों के सम्पर्क में आकर विषैले होगे और दूसरे नये-नये विष पैदा करने में मदद करेंगे । ऐसी स्थिति में यान्त्रिक सभ्यता को रोकने और वायु शुद्ध करने के लिए सारे विश्व में यज्ञ परम्परा डालने के

अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं रह जाता । यज्ञों में ही वह सामर्थ्य है जो वायु प्रदूषण को समानान्तर गति से रोक सकती है ।

अभी इस गन्दगी को दूर करने के लिए अमेरिका प्रति वर्ष १२०००००००० डालर्स) एक डालर का मूल्य सात रुपये से कुछ अधिक होता है) खर्च करता है । ओजोन, सल्फर फ्लोराइड से शाक-सब्जी तथा फूल फसलों की क्षति रोकने के लिए ५०० मिलियन डालर्स, धातुओं पर जंग लगने, रंग उड़ने से सफाई व घर खर्च आदि बढ़ जाने, जानवरों के मरने, खाने की वस्तुऐं क्षतिग्रस्त होती हैं, नाइलोन, टायर और ईंधन नष्ट होता है, इन सबको रोकने और रख-रखाव में ३०० मिलियन डालर्स तथा सूर्य प्रकाश के मन्द पड़ जाने के कारण जो अतिरिक्त प्रकाश की व्यवस्था करनी पड़ती है उसमें ४० मिलियन डालर्स का खर्च वहन करना पड़ता है ।

वायु-प्रदूषण बढ़ने के अनुपात से सुरक्षात्मक प्रयत्नों में खर्च की वृद्धि भी होगी तो भी रोक सकना सम्भव नहीं होगा । कैलीफोर्निया के कृषि विभाग, सेवा योजन विभाग के प्रोग्राम लीडर डा. पो. औस्टरली ने भविष्यवाणी की है कि अमेरिका में वायु गन्दगी के कारण जो नुकसान होने वाला है वह बहुत भयंकर है और उसमें सुधार की कोई सम्भावना नहीं है । अगले कुछ दिनों में धुआँ इतना अधिक हो जायेगा कि प्रातःकाल चिड़ियों का चहचहाना तक बन्द हो जायेगा क्योंकि उन्हें सबेरे-सबेरे सामान्य सांस लेने में कठिनाई होने लगेगी, चहचहाने में तो श्वांस-प्रश्वांस की क्रिया बढ़ जाती है । इस स्थिति में उन्हें चुप रहने में ही सुविधा होगी ।

न्यूयार्क का हिल्टन होटल औद्योगिक बस्ती के बीच बना हुआ है । इस होटल की दीवारों, शीशों और फर्नीचर आदि पर धुएँ और कार्बन कणों का ३।१।२ वर्ष की अवधि में ही इतना बुरा प्रभाव पड़ा कि उसका सारा रंग उड़ गया, दीवारें खस्ता पड़ गईं उसकी दुबारा ओवरहालिंग करानी पड़ी जिसमें पचास हजार डालर्स (लगभग ४ लाख रुपये) का खर्च आया । यह तो रही एक सामान्य बिल्डिंग की बात । सारे विश्व के जन स्वास्थ्य, कृषि और कृषि में सहयोगी पशुओं, धातुओं, भवनों आदि पर हुए इसके दुष्प्रभाव की हानि की कुल लागत की कल्पना भी नहीं की जा सकती । न्यूयार्क के सेंट ल्यूकस अस्पताल का गुम्बद संगमरमर और टेराकोटा का बना हुआ है । सल्फर डाई ऑक्साइड

युक्त विषैले धुएँ ने उसे इस तरह कमजोर किया कि कोई भी लड़का वहाँ पहुँचकर उसे चुटकियों में ऐसे खोद लेता है जैसे मिट्टी । उसकी तहें हाथ से मसल दी जातीं तो आटे की तरह चूर-चूर हो जातीं । गुम्बद इतना खस्ता हो गया कि उसे बदलना पड़ा और उस पर सीधी छत डालनी पड़ी । पत्थर और कांक्रीट की बिल्डिंगों का यह हाल हो तो मनुष्य और प्रकृति के कोमल भागों पर उसके दुष्प्रभाव की कल्पना ही नहीं की जा सकती ।

यह हानियाँ तभी सुधार और नियन्त्रण में आ सकती हैं जब धुएँ को आकाश में नष्ट करने वाली प्रणाली का विस्तार हो । आज की स्थिति में यह कल-कारखाने रुकें ऐसा नितान्त सम्भव नहीं दिखाई देता, कल-कारखाने रुकेंगे नहीं तो धुआँ पैदा होने से बन्द नहीं होगा, धुआँ होगा तो मानव-जाति पर संकट की छाया घिरी ही रहेगी । यह धुआँ कभी भी मनुष्य जाति को गम्भीर संकट में डाल सकता है । अतएव एक बार फिर से आकाश की शुद्धता के लिए भारतीय प्रयत्न व शोध-यज्ञों का अध्ययन अनुसंधान व तीव्र प्रसार करना होगा ।

'लोहे को लोहा काटता है ।" शरीर में चेचक के कीटाणु बढ़ने की सम्भावना हो तो इन्जेक्शन द्वारा चेचक के ही कीटाणु शरीर में प्रविष्ट कराये जाते हैं, यह कीटाणु रक्त की श्वेत कीटाणुओं के साथ मिल जाते हैं । श्वेत कणों में चेचक के कीटाणुओं से लड़ने की शक्ति नहीं होती । बन्दूकधारी को बन्दूकधारी ही मार सकता है । डाकू को पकड़ना हो तो बन्दूक चलाने से लेकर खन्दक में छुपकर बचाव आदि का समानान्तर ज्ञान रखने वाला सिपाही ही लगाया जा सकता है । उसमें गाँव का निहत्था किसान सफल नहीं हो सकता । इन्जेक्शन में दिये चेचक के कीटाणु अच्छे कीटाणुओं के साथ आगे बढ़कर अपने ही तरह के द्रोही कीटाणुओं को मार डालते हैं । उसी तरह हवन में जलाई गई औषधियाँ भी धुएँ के रूप में प्रकाश-वर्षा के रूप में उठती हैं और धुएँ के विषैले प्रभाव को नष्ट करती हुई मनुष्य शरीर, पशु-पक्षियों, वनस्पति आदि सबको जीवन देती चली जाती हैं ।

फ्रांस के विज्ञान वेत्ता प्रो. टिलवर्ट का कथन है कि खाँड़ के धुएँ में वायु को शुद्ध करने की विलक्षण शक्ति है । चेचक के टीके के आविष्कारक डा. हेफकिन (फ्रांस) ने घी जलकार परीक्षण किया और बताया कि उससे रोग कीटाणु नष्ट होते हैं । डा. टाइलिट ने किशमिश,

मुनक्के इत्यादि सूखे मेवों के धुएँ के परीक्षण के बाद बताया कि उस धुएँ में टाइफाइड के कीटाणु नष्ट करने की क्षमता होती है । जायफल जलाने से उसके तेल परमाणु १।१०००० से १।१००००००० से. मी. के व्यास तक के सूक्ष्म पाये गये । इनमें कार्बन के धुएँ के कणों में घुसकर उन्हें शुद्ध तत्वों में बदलने की क्षमता पाई गई । ६ अप्रैल १९५५ के अंग्रेजी-पत्र लीडर में "न्यू क्योर फार टी. वी." शीर्षक से हवन के धुएँ को बहुमूल्य औषधोपचार के रूप में मानकर अमरीकी वैज्ञानिकों को उस पर अनुसंधान करने का आह्वान किया गया है ।

सांस के लिए केवल आक्सीजन ही काफी नहीं-हवा में रहने वाले धूलिकणों का विद्युत आवेश ऋणात्मक होना भी आवश्यक है । सर्वविदित है कि वायु में छोटे-छोटे धूलिकण भरे रहते हैं । इन आवेश कणों को 'आयन' कहा जाता है । धनात्मक आवेश वाले स्वास्थ्य पर बुरा असर डालते हैं और ऋणात्मक कण श्रेयस्कर सिद्ध होते हैं । जिस प्रकार स्वास्थ्य वर्धक जलवायु प्राप्त करने की व्यवस्था स्वस्थ जीवन के लिए आवश्यक समझी जाती है । उसी प्रकार अब विशेषज्ञ लोग यह भी सुझाव देते हैं कि ऐसी जगह रहना चाहिए जहाँ वायु में रहने वाले धूलिकण ऋणात्मक विद्युत से आवेशित हों । प्रयास यह किया जा रहा है कि वायु में आवेश नियंत्रित करके बिगड़े स्वास्थ्य को सुधारने की, रोगों के निवारण की व्यवस्था की जाय । इस संदर्भ में काफी खोजें हुई हैं और अभीष्ट आवेश उत्पन्न करने की एक नई प्रक्रिया 'आयनिक थेरैपी" और भी सम्मिलित कर ली गई है । फेंफड़ों से सम्बन्धित श्वांस रोगों पर तथा रक्त संचार प्रक्रिया में दोष होने के कारण उत्पन्न हुए रोगों के उपचार में इस पद्धति का आश्चर्यजनक परिणाम देखने को मिल रहा है ।

यों तमाखू खाना भी कम विपत्ति का कारण नहीं है, पर धुएँ के द्वारा जितना विष शरीर में पहुँचता है उतना ही यदि उसे खाकर उदरस्थ किया जाय तो अपेक्षाकृत कम हानि होगी, तमाखू खाने वालों को मुँह का, गले का, फेंफड़े का और पेट का केन्सर इसलिए होता है कि उसकी अत्यधिक मात्रा पेट में ठूँस ली जाती है । धुएँ के द्वारा, कारों, फैक्टरियों द्वारा तथा सिगरेट पीने वाले जितना जहर खाते हैं उतनी ही मात्रा यदि खाई जाय तो तुलनात्मक दृष्टि से पीने वालों की तुलना में खाने वालों को कम हानि उठानी पड़ेगी ।

कोई वस्तु खाई जाय तो उसकी अवांछनीय विषाक्तता का बहुत कुछ

भाग मुख और पेट में स्रवित होने वाले रस सम्भाल सुधार लेते हैं । सर्प का विष यदि मुँह से खाया जाय तो उतनी हानि नहीं करेगा पर यदि सीधा रक्त में सम्मिलित हो जाय तो मृत्यु का संकट उत्पन्न करेगा । टिटनिस के विषाणुओं के सम्बन्ध में भी यही बात है । टिटनिस के कीड़े तभी संकट उत्पन्न करते हैं जब वे खुले घाव में होकर रक्त में सम्मिलित हो जायँ । इन्हीं कीड़ों को यदि आहार या जल द्वारा पेट में पहुँचा दिया जाय तो उसका इतना बुरा प्रभाव नहीं पड़ेगा । इन तथ्यों से यह स्पष्ट है कि वस्तुएँ आहार द्वारा सन्तुलित और ग्राह्य प्रभाव ही उत्पन्न कर सकती हैं । वे यदि सामान्य स्तर की हों तो वे न तो बहुत अधिक हानि ही पहुँचा सकेंगी और न अत्यधिक लाभ ही उत्पन्न करेंगी । शरीर उन्हें काट-छाँटकर अपने सामान्य क्रम के अनुरूप बना लेगा ।

दवा-दारू, गोली, चूर्ण, मिक्चर के रूप में खिलाने की अपेक्षा उन्हें इंजेक्शन द्वारा रक्त में सम्मिश्रित करना इसी दृष्टि ये अधिक लाभदायक माना गया है कि औषधि रक्त में सीधी सम्मिलित होकर अपना पूरा प्रभाव डालती है और उसे पेट के रसों द्वारा होने वाली काँट-छाँट का सामना नहीं करना पड़ता । रक्त में औषधि सम्मिलित करने से भी अधिक प्रभावी उपाय साँस द्वारा उसे शरीर में पहुँचाया जाना है । यज्ञ-विज्ञान का सारा आधार इसी तथ्य पर विनिर्मित है ।

भारतीय मनीषियों की दृष्टि उनकी प्रज्ञा बुद्धि आज के वैज्ञानिकों की अपेक्षा सहस्र गुनी प्रखर और पैनी थी । उनने यज्ञ को इतना अधिक महत्व दिया था कि स्वतंत्र राय से यजुर्वेद की रचना ही अलग करनी पड़ी । वातावरण की शुद्धि, कठिन रोगों की चिकित्सा, अनेक सामान्य प्रयोजनों के लिए यज्ञ को सर्वोपरि आश्रय माना गया यों उसका नियोजन आध्यात्मिक कल्याण के लिए अधिक हुआ पर भौतिक प्रगति की उपेक्षा भी नहीं लिखी गई है ।

कस्त्वा विमुञ्चति सत्वाविमुति कैस्मैत्व विमुञ्चति तस्मै त्वं विमुञ्चति । पोषाय रक्षा भर्गोसि ।

-यजु. २/२३

सुख शान्ति चाहने वाला कोई व्यक्ति यज्ञ का परित्याग नहीं करता । जो यज्ञ को छोड़ता है, उसे यज्ञ रूप परमात्मा भी छोड़ देता है । सबकी उन्नति के लिए आहुतियाँ यज्ञ में छोड़ी जाती हैं, जो नहीं छोड़ता वह राक्षस हो जाता है ।

यज्ञेन पापैः बहुभिर्विमुक्तः प्राप्नोत्ति लोकान् परमस्य, विष्णो

–हारीत

यज्ञ से अनेक पापों से छुटकारा मिलता है तथा परमात्मा के लोक की भी प्राप्ति होती है ।

पुत्रार्थी लभते पुत्रान् धनार्थी लभते धनम् ।
भार्यार्थी शोभानां भार्या कुमारी च शुभम् पतिम् ।।
भ्रष्टराज्यस्तथा राज्य श्री कामः श्रियमाप्नुयात् ।
यं यं प्रार्थयेत् कामः सर्वं भवति पुष्कल ।।
निष्कामः कुरुते यज्ञ स परब्रह्म गच्छति ।

–मत्स्य पुराण ९३/११७

यज्ञ से पुत्रार्थी को पुत्र लाभ, धनार्थी को धन लाभ, विवाहार्थी को सुन्दर भार्या, कुमारी को सुन्दर पति, श्रीकामना वाले को ऐश्वर्य प्राप्त होता है और निष्काम भाव से यज्ञानुष्ठान से परमात्मा की प्राप्ति होती है ।

न तस्य ग्रह पीड़ा स्यान्नच बन्धु धनक्षयः ।
ग्रह यज्ञ व्रतगेहे लिखित यन्त्र तिष्ठति ।।
न तत्र पीड़ा पापानां न रोगो न च बन्धनम् ।
अशेषा यज्ञ फलदमशेषाघौघ नाशनम् ।।

–कोटि होम पद्धति

यज्ञ करने वाले को पीड़ा, बन्धु नाश, धन, क्षय, पाप, रोग, बन्धन आदि की पीड़ा नहीं सहनी पड़ती । यज्ञ का फल अनन्त है ।

देवा सन्तोषिता यज्ञोलोकान् सम्बर्धयन्त्युत ।
उभयोर्लोकयोः देव भूतियज्ञ प्रदृश्यते ।।
तस्माद्यद्देज्ञावं याति पूर्वजः सहमोदते ।
नास्ति यज्ञ समंदानं नास्ति यज्ञ समोविधिः ।
सर्व धर्म सुमुदेव्यो देवि यज्ञ समाहितः ।।

–महाभारत

यज्ञों से सन्तुष्ट होकर देवता संसार का कल्याण करते हैं, यज्ञ द्वारा लोक–परलोक का सुख प्राप्त हो सकता है । यज्ञ से स्वर्ग की प्राप्ति होती है । यज्ञ के समान कोई दान नहीं, यज्ञ के समान कोई विधि–विधान नहीं, यज्ञ में ही सब धर्मों का उद्देश्य समाया हुआ है ।

असुराश्च सुराश्चैव पुण्यहेतोर्मख क्रियाम् ।
प्रयतन्ते महात्मानस्तस्तमद्यजः परायणाम् ।

यज्ञैरेव महात्मानो ववुभुराधिका सुराः । —महाभारत

असुर और सुर सभी पुण्य के मूल्य हेतु यज्ञ के लिए प्रयत्न करते हैं । सत्पुरुषों को सदा यज्ञ परायण होना चाहिए । यज्ञों से ही बहुत से सत्पुरुष देवता बने हैं ।

यदिक्षितायुर्यदि वा परेतो मृत्योरन्तिक नीति एवं ।
तमाहराभिनि ऋते रूपस्था तस्यार्थमेनं शत शादपाय ।

—अथर्व ३/११/२

यदि रोगी अपनी जीवन शक्ति को खो भी चुका हो, निराशाजनक स्थिति को पहुँच गया हो, यदि मरणकाल भी सामने आ पहुँचा हो, तो भी यज्ञ उसे मृत्यु के चंगुल से बचा लेता है और सौ वर्ष जीवित रहने के लिए पुनः बलवान बना देता है ।

प्रयुक्तया यथा घेष्ट्वा पाजयक्ष्मा पूरोजितः ।
तां वेद विहिताभिष्ठामारोग्यार्थी प्रयोजयेत् ।।

—चरक चि. खण्ड ८/१२२

तपैदिक सरीखे रोगों को प्राचीनकाल में यज्ञ के प्रयोग से नष्ट किया जाता था । रोग—मुक्ति की इच्छा रखने वालों को चाहिए कि उस वेद रहित यज्ञ का आश्रय लें ।

नास्त्य यज्ञस्य लोको वै ना यज्ञो विन्दते शुभम् ।
अयज्ञो न च पूतात्मा सश्यशितच्छिन्न पूर्ण्रवत् ।

—शंख

यज्ञ न करने वाला मनुष्य लौकिक और पारलौकिक सुखों से वञ्चित रह जाता है । यज्ञ न करने वाले की आत्मा पवित्र नहीं होती और वह पेड़ से टूटे पत्ते की तरह नष्ट हो जाता है ।

शिवो नामासि स्विधितिस्ते पता नमस्तेऽअतु मा मा हि सीः । निवर्त्तताम्यायुषेन्नाद्याय प्रजननाय रायस्पोषाय सुप्रजास्त्वाय सुवीर्याय ।

अर्थ—हे यज्ञ ! तू निश्चय ही कल्याणकारी है । स्वयंभू परमेश्वर तेरा पिता है । तेरे लिए नमस्कार है, तू हमारी रक्षा कर, दीर्घ आयु, उत्तम अन्न, प्रजनन शक्ति, ऐश्वर्य समृद्धि, श्रेष्ठ सन्तति एवं मंगलोन्मुखी बल पराक्रम के लिए हम श्रद्धा, विश्वास पूर्वक तेरा सेवन करते हैं ।

त्वामग्ने यजमानाऽनुद्यन विश्वावसु दधिरे वार्याणि त्वया सह द्रविणमिच्छमाना व्रजं गोमैत मुशिंजो विवव्रुः । —यजु. १२/२८

अर्थ—हे देव अग्ने ! जो सदा यज्ञ करते हैं, ऐसे सद्‌गृहस्थ सदा ही श्रेष्ठ सम्पत्तियों के स्वामी होते हैं, उन्हें इस यज्ञ के पुण्य प्रभाव से सदैव ज्ञानियों की सत्संगति के साथ ही धन की प्राप्ति भी होती रहती है ।

पुनस्त्वादिंत्या रुद्रा वसवः समिन्धतां पुनर्ब्रह्माणो वसनीय यज्ञैः धृतेन त्व त्व तन्वं वर्धयस्व सत्या सन्त यजमानस्य कामाः ।

—यजुर्वेद १२/२४

अर्थ—हे ऐश्वर्य को प्राप्त कराने वाले यज्ञाग्ने ! तुझे ये यज्ञकर्त्ता आदित्य यज्ञ, वसुयज्ञ एवं रुद्र यज्ञ के द्वारा बारम्बार प्रदीप्त करें । इन यज्ञों से तुम अपने तेजों की अभिवृद्धि करके यज्ञकर्त्ताओं की कामना पूर्ण करो या पूर्ण करने में समर्थ हो ।

अयमग्निः पुरीष्यो रयिमान् पुष्टिवर्द्धनः ।
अग्ने पुरिष्याभि द्युम्नमभि सहऽआयच्छयस्व ।।

—यजु. ३/४०

अर्थ—यह यज्ञाग्नि वृष्टि कराने वाली, धन देने वाली तथा पुष्टि और शक्ति को बढ़ाने वाली है । पुरीष्य अग्नि ! तुम हमारे सब ओर बल और यश का विस्तार करो ।

ति शद्धाम विराजति वाक् तंगाय धीयते ।
प्रति वस्तोरह द्युभिः । —यजु. ३/८

अर्थ—यह यज्ञ जो प्रतिदिन किया जाता है, वह अपनी प्रदीप्त ज्वालाओं से युक्त निरन्तर कार्यकर्त्ता के अन्तर में विराजता रहता है, फिर ऐसी दशा में किसी अन्धकार, असुर अज्ञान को ठहरने को (यहाँ) अवकाश ही कैसे हो सकता है ? सच्चे यज्ञकर्त्ता एक दिन सम्पूर्ण अन्धकार और अज्ञान से मुक्त होकर दिव्य परमात्मा के चरणों में पहुँच जाते हैं ।

शर्मास्य वधूय १७ त्वादि रक्षोऽवधूताऽरातयोऽदियास्त्वगसिं प्रयिं त्वादितिर्वेत्तु । अद्रिरसि वानस्पत्यो ग्रायासि पृथुबुध्नः प्रति त्वादित्या स्त्वग्वेत्तु ।

—यजु. १/१४

अर्थ—हे यज्ञ ! तुम सुखकारक एंव आश्रय लेने योग्य हो, तुम से रोग विनष्ट होते हैं तथा रोग के कीटाणु भी ध्वस्त होते हैं, तुम पृथ्वी के लिए त्वचा की भाँति रक्षक हो । तुम हरीतिमा पूरित वनस्पतियों से आच्छादित पर्वत के सदृश्य सुन्दर, सुहावने और हितकारी हो, तुम इस सुविस्तृत आकाश में जल से लबालब भरे वर्षाभिमुख बादलों के सदृश हो ।

धान्यमसि धिनुहि देवान् प्राणाय त्वोदानायत्वा व्यनाय त्वा । दीर्घामनु प्रसितिमायुषे धां देवोव, सविता हिरण्यपाणिः प्रतिगृभ्यणात्वच्छिद्रेण पाणिना चक्षुषे त्वा महीनां पयोऽसि ।

–यजु. १/२०

अर्थ–हे यज्ञ ! तुम देवों के धान्य (भोजन) हो, अतः इस हवि के द्वारा तुम उन्हें प्रसन्न करो, जिससे वे प्रसन्न होकर यज्ञकर्त्ता को सुख और कल्याण प्रदान करें । हम तुम्हें प्राण, उदान, व्यान आदि प्राणों में, आयु में तथा जीवन की व्यापक उन्नति करने के लिए धारण करते हैं, आपके अनुग्रह से यह सब वस्तुएँ हम प्राप्त करेंगे ।

आदित्यै व्युन्दनमसि विष्णो स्तुपोऽस्यूर्णम्रदस त्वा स्तृण मि स्वासस्था देवेभ्यो भवपतये स्वाहा, भुवन पतये स्वाहा भूतानां पतये स्वाहा ।

यजुर्वेद १/१/२

अर्थ–हे यज्ञ ! तुम पृथ्वी को सींचने वाले हो, अर्थात् पृथ्वी निवासिसों की सर्वांगीण अभ्युन्नति और कल्याण के अमृत से अभिसिंचन करते हो । हे देवों को सुखद स्थिति देने वाले एवं सभी भांति रक्षा करने वाले यज्ञ ! हम तुम्हें सुविस्तृत और सूक्ष्मतर बनाना चाहते हैं ।

अग्निहोत्र का स्वास्थ्य पर प्रभाव

रोगों की चिकित्सा में जिन औषधियों का प्रयोग किया जाता है उनका प्रभाव इस बात पर निर्भर रहता है कि वे कितनी सूक्ष्म बनाकर दी गई हैं । स्थूल की अपेक्षा सूक्ष्म की सामर्थ्य में कितना अन्तर है उसे अणु विज्ञान के आधार पर जाना जा सकता है । मिट्टी की एक डेली जिसमें करोड़ों करोड़ अणु होते हैं कुछ विशेष महत्व नहीं रखती, पर जब उसका एक सूक्ष्म परमाणु अलग से उपलब्ध करके उसका विस्फोट किया जाता है तो असीम शक्ति उत्पन्न होती है । एक मिर्च को ही लें–उसे साधारण रीति से पीसकर खा लिया जाय तो पास बैठे दो–चार आदमियों को उसकी थोड़ी–सी धमकी अनुभव होगी, पर यदि उसे आग में जलाया जाय तो उसकी गन्ध काफी दूर तक फैलेगी और उस क्षेत्र में सबको खाँसी या छींक अनुभव होगा । निस्संदेह किसी वस्तु को जितना सूक्ष्म बनाया जायगा वह उतनी ही व्यापक और सशक्त होती चली जायगी ।

औषधियों के बारे में भी यही बात है । कोई औषधि जड़ी–बूटी

ऐसे ही उखाड़कर चबा ली जाय तो उसका बहुत थोड़ा असर होगा, पर उसे बारीक पीस–छानकर या अर्क निकाल कर सेवन किया जाय तो अधिक असर करेगी । आयुर्वेद में चौंसठ पहरा पीपल का बहुत गुण माना गया है, वह अनुपान–भेद से सौ रोगों को अच्छा करती है । पीपल मामूली–सी औषधि है, साधारण गरम मसाले में काम आती है, पर उसे लगातार बिना रुके आठ दिन तक घोटते रहा जायगा तो उसके कण बहुत सूक्ष्म हो जाते हैं और उसी अनुपात से उसकी शक्ति भी बढ़ जाती है । डीशेन की प्रख्यात दवाऐं अपेक्षाकृत अधिक गुणकारी होती हैं । कारण यह है कि उनकी अधिकतम पिसाई–घुटाई की जाती है । ताकि उस दवा की सूक्ष्म शक्ति का पूरा विकास हो सके । होम्योपैथी में औषधि निर्माण विद्या का आधार यही है । वे दवाओं का इतना सूक्ष्मीकरण करते हैं कि नगण्य–सी दवा इतना प्रभावशाली बन जाती है कि एक खुराक का असर महीनों बना रहे । ऐलोपैथी में भी इन्जेक्शन निर्माण का आधार यही है कि औषधि को इतनी सूक्ष्म स्थिति तक पहुँचा दिया जाता है कि उसे रक्त में पहुँचते ही समस्त शरीर में फैल जाने में विलम्ब न लगे । भोजन को अधिक चबाने पर बल इसलिए दिया जाता है कि उसे दाँतों से जितना अधिक पीसा जायगा उतनी–सूक्ष्म शक्ति उभरेगी और वह अधिक सुपाच्य तथा गुणकारी बन जायगा ।

वस्तुओं को सूक्ष्म करने का मोटा तरीका–कूट–पीस कर छान लेना, अर्क निकालना और द्रव रूप में परिणत करना उसे अधिक सूक्ष्म करने का विधान है । इससे भी अधिक सूक्ष्मता उसे वायुभूत बनाने में आती है । आयुर्वेद में धूम्र चिकित्सा का अनेक जगह वर्णन है । जहाँ औषधि को पचाने में देर लगती दीखे या पचाने में कठिनाई हो वहाँ धूम्र के माध्यम से वह वस्तु जल्दी शरीर में पहुँचाई जा सकती है । मिर्च जलाने पर उसका प्रभाव दूर तक पहुँचाने की बात ऊपर लिखी जा चुकी है । जलने से कोई वस्तु नष्ट नहीं होती वरन् सूक्ष्म होकर व्यापक व समर्थ हो जाती है । ऐसी घटना सुनने को मिलती है कि जलते कोयले अंगीठी में भरकर दरवाजे बन्द करके सोने वाले लोग सबेरे मरे पाये गये । उस कमरे में यदि दस मन कोयला भरा होगा तो भी किसी का कुछ न बिगड़ता । दो सेर कोयले की गैस इतनी प्रभावशाली सिद्ध हुई कि उसने घर में सोते हुए दस आदमियों की जान ले ली । सूक्ष्म होने पर किसी भी वस्तु की शक्ति बढ़ जाती है । पानी के हौज भरे रहें

उनका कुछ प्रभाव नहीं, पर उसी पानी की भाप बना ली जाय तो हजारों टन वजन से लदी रेलगाड़ी उसकी भाप से दौड़ने लगती है । पुराने कुएँ या बन्द तहखाने में गैस कितनी घातक होती है यह सभी जानते हैं । वैज्ञानिकों ने सरसों से ऐसी गैस तैयार की है जो जरा-सी देर में हजारों आदमियों की जान ले सकती है ।

हवन में स्वास्थ्य संवर्धन और रोग निवारण की जो अद्भुत शक्ति है उसका कारण पदार्थों को वायुभूत बनाकर उसका लाभ लेना है । वायु रूप बनी हुई औषधियाँ जितना काम करती हैं उतना वे खाने-पीने से नहीं कर सकतीं, तपैदिक आदि रोगों के रोगियों को डाक्टर लोग भुवाली, शिमाल, मंसूरी आदि अच्छी जलवायु के स्थानों में जाकर रहने की सलाह देते हैं । कई अच्छे अस्पताल भी वहाँ बने हैं । डाक्टरों का कहना है कि औषधि सेवन के साथ-साथ यदि उत्तम आक्सीजन मिली वायु सेवन की सुविधा हो तो रोग अच्छा होने में बहुत सहायता मिलेगी । निस्संदेह प्राण वायु (ऑक्सीजन) भी एक दवा ही है । प्रातःकाल जब वायु में आक्सीजन की मात्रा अधिक होती है, टहलने जाना आरोग्य वर्धक माना जाता है । वायु में लाभदायक तत्व मिले हों तो उसकी उपयोगिता का लाभ स्वतः ही मिलेगा । हवन द्वारा यही प्रयोजन पूरा किया जाता है । उपयोगी औषधियों को वायुभूत बनाया जाय और उसका लाभ उस वातावरण के सम्पर्क में आने वालों को मिले, आरोग्य की दृष्टि से हवन का यह लाभ बहुत ही महत्वपूर्ण है । पौष्टिक पदार्थों के बारे में भी यही बात है । दुर्बल शरीर को बलवान बनाने के लिए पौष्टिक आहार की आवश्यकता अनुभव की जाती है, पर पौष्टिक पदार्थों को कमजोर देह और कमजोर पेटवाला व्यक्ति हजम कैसे करे यह समस्या फिर भी सामने आती है । दुर्बल या रोगी व्यक्ति की पाचन क्रिया मन्द हो जाती है । साधारण हलका भोजन तक थोड़ी मात्रा में लेने पर भी जब अपच, दस्त, उल्टी आदि की शिकायत शुरू हो जाती है तो अभीष्ट मात्रा में पौष्टिक भोजन कैसे हजम हो ? इसका सरल साधन हवन है। अग्निहोत्र में मेवा आदि पदार्थ हवन किए जायें और उन्हें नाक-मुख या रोमकूपों द्वारा ग्रहण किया जाय तो वे शरीर में आसानी से प्रवेश कर सकते हैं और वायुभूत होने के कारण अपनी सूक्ष्मता के आधार पर लाभदायक अधिक हो सकते हैं ।

पुराने और कष्ट साध्य रोगों में अक्सर कहीं भीतर घाव हो जाते हैं

और उनमें मवाद बनने लगता है । इसे सुखाने के लिए जो दवायें दी जाती हैं, वे विकार के साथ-साथ शरीर के स्वस्थ जीवाणुओं का भी विनाश करती हैं, फलस्वरूप रक्त की रोग निवारक शक्ति घट जाती है, तब दवायें भी काम करना बन्द कर देती हैं और रोग कीटाणुओं की तरह वह दवा भी उल्टी हानि करने लगती है । जब कोई उपाय नहीं रहता तो उस सड़न या जख्म को सुखाने के लिए 'रेडियम' का उपयोग किया जाता है । यह एक आग जैसी चीज है, जो भीतर पहुँच कर जलाने का काम करती है । इस प्रयोग से कभी लाभ होता है कभी नहीं भी होता है । इस प्रयोजन के लिए हवन की गैस काम में लाई जाय तो बहुत बार रेडियम तथा एण्टीवायटिक दवाओं की अपेक्षा कहीं अधिक लाभ होता है और बिना अन्य औषधियों जैसी हानि की आशंका के कठिन और पुराने रोगों से छुटकारा पाया जा सकता है ।

हवन की गैस सड़न रोकती है । शरीर के भीतर या बाहर जिन छोटे या बड़े जख्मों के कारण पायेरिया, तपैदिक, दमा, नासूर कैन्सर, कोलाइटिस, संग्रहणी, जुकाम आदि रोग होते हैं उन्हें सुखाने के लिए हवन की गैस कितनी अधिक उपयोगी सिद्ध होती है, इसका प्रयोग कोई भी करके देख सकता है ।

हवन की वायु जहाँ रोग निवारक है, वहाँ रोग निरोधक भी है । बीमारियों से बचने के लिए हैजा, चेचक, टी. बी. आदि के टीके लिए जाते हैं । इन टीकों से हल्के रूप में यही रोग पैदा किया जाता है जिसके प्रतिरोध में टीका बना था । इस प्रकार पहले हल्का रोग उत्पन्न करेंगे ताकि भविष्य में बड़े रोग की चढ़ाई न हो यह बुद्धिमानी की बात नहीं है, डाकू से लड़ने के लिए चोर को घर में बसा लेना यह तात्कालिक लाभ की दृष्टि से भले ही उपयोगी हो पर दूरदर्शिता नहीं है । क्योंकि डाकू न आये तो भी चोर तो अवसर मिलने पर नुकसान कर ही सकता है । ऐलोपैथिक रोग निवारक टीकों की अपेक्षा हवन की वायु अधिक विश्वस्त और हानि रहित है । यज्ञ की ऊष्मा शरीर में प्रवेश कर केवल मृण बीजाणुओं को ही मारती है, स्वस्थ कोषों पर उनका तनिक भी बुरा प्रभाव नहीं पड़ता वरन् उनकी पुष्टि ही होती है । ऐलोपैथी में अलग-अलग टीके लगवाने पड़ते हैं । जब कि हवन की वायु से अकेले ही समस्त रोगों से लड़ सकने वाली क्षमता शरीर में उत्पन्न हो जाती है । इस प्रकार यह जहाँ हानि रहित उपाय है वहाँ सस्ता भी है ।

शारीरिक रोगों के निवारण करने के अतिरिक्त हवन की वायु में मानसिक रोगों के निवारण की अपूर्व क्षमता है । अभी तक केवल पागलपन और विक्षिप्तता के ही इलाज ऐलोपैथी में निकले हैं, पूर्ण पागलों की अपेक्षा आधे पागलों की संख्या संसार में शारीरिक रोगियों से भी अधिक है । मनोविकारों में ग्रसित लोग अपने लिए तथा दूसरों के लिए अनेक समस्याऐं पैदा करते हैं । शारीरिक रोगों की तो दवा-दारू भी है पर मनोविकारों की कोई चिकित्सा अभी तक नहीं निकल सकी है । फलस्वरूप सनक, उद्वेग, आवेश, सन्देह, कामुकता, अहंकार, अविश्वास, निराशा, आलस्य, विस्मृति आदि अनेक मनोविकारों से ग्रसित लोग स्वयं उद्विग्न रहते हैं और संबंधित सभी लोगों को खिन्न बनाये रहते हैं । इतना ही नहीं ऐसे व्यक्ति दूसरों की नजरों में गिर जाते हैं और सहयोग सद्भाव खो बैठते हैं । फलस्वरूप उनकी प्रगति ही नहीं रुक जाती बदनामी और हानि भी उठानी पड़ती है । इन सभी मनोविकारों की एक मात्र चिकित्सा हवन है । हवन सामग्री की सुगन्ध के साथ-साथ दिव्य वेदमंत्रों के प्रभावशाली कम्पन मस्तिष्क के मर्म-स्थलों को छूते और प्रभावित करते हैं । फलतः मनोविकारों के निवारण में उनका बहुत प्रभाव पड़ता है । भारतीय संस्कृति में जन्म से लेकर मरण तक के षोडश संस्कारों में हवन को अनिवार्यता से जोड़ा गया है ताकि उसके प्रभाव से मनोविकारों की जड़ ही कटती रहे । मनुस्मृति में यज्ञ के सम्पर्क से ब्राह्मणत्व के उदय की बात इसीलिए कही गई है कि हवन की ऊष्मा से सम्पर्क स्थापित करने वाला व्यक्ति विचारवान् और चरित्रवान् दोनों ही विशेषताओं से युक्त बनता है । ऐसे ही लोगों को ब्राह्मण कहते हैं ।

रोगों, कीटाणुओं को नष्ट करने के लिए यज्ञ धूम्र की शक्ति को प्राचीनकाल में भली प्रकार परखा गया था । इसके उल्लेख शास्त्रों में स्थान-स्थान पर उपलब्ध होते हैं । यथा-

दिवि विष्णु व्यक्तिस्त जागनेत छंदसा ।
ततो निर्भयाक्ता योऽस्यमान द्वेष्टि यंच वयं द्विष्मः ।
अन्तरिक्षे विष्णुव्यक्रंस्त त्रैप्टुते छन्दसा ।
सतो नर्भक्तो ।
पृथिव्यां विष्णुर्व्यक्रस्तंगायणे छन्दसा ।
अस्यादन्नात् । अस्ये प्रतिष्ठान्ये । अगन्य स्वः संज्योतिषाभूम ।

-यजु. २/२५

अर्थ–अग्नि में प्रक्षिप्त जो रोगनाशक, पुष्टि प्रदायक और जलादि संशोधक हवन सामग्री है, वह भस्म होकर वायु द्वारा बहुत दूर तक पहुँचती है और वहाँ पहुँचकर रोगादिजनक वस्तु को नष्ट कर देती है । इस हेतु वेद में कहा जाता है, जो वस्तु हम लोगों से द्वेष करती है एवं जिससे हम लोग द्वेष करते हैं, वह वस्तु यज्ञ के द्वारा नष्ट हो जाती है । आगे भी यह भाव समझना चाहिए । अर्थात् यज्ञ से इहलौकिक और पारलौकिक दोनों कार्य सम्पन्न होते हैं ।

न तं यक्ष्मा अरुन्धते नैन शपथको अश्नुते ।
यं मेषजस्यं गुग्गुलोः सुरभिर्गन्धो अश्नुते ।।
विष्वञ्चस्तस्माद् यक्ष्मा मृगाद्रश्ला द्रवेरते । आदि

–अथर्व. का. १९ सू. ३८ मं १, २

अर्थ–जिसके शरीर को रोगनाशक गूगल का उत्तम गन्ध व्यापता है उसे राज–यक्ष्मा की रोग पीड़ा नहीं होती । दूसरे शपथ भी नहीं लगता । उससे सब प्रकार के यक्ष्मा रोग शीघ्रगामी हरिणों के समान काँपते हैं, डर कर भागते हैं ।

यदि क्षितायुर्यदि वा परे तो यदिं मृत्योरन्तिकं नीत एव ।
तमा हरामि निऋतेरुपस्थात्पस्पार्शमेनंशतशारदाय ।।

–अथर्व का. ३ सूक्त ११ मंत्र २

अर्थ–यदि रोग के कारण न्यून आयु वाला हो, अथवा इस संसार के सुखों से दूर हो, चाहे मृत्यु के निकट आ चुका हो, ऐसे रोगी को भी महारोग के पाश से छुड़ाता हूँ इस रोगी को सौ शरद ऋतुओं तक जीने के लिए प्रबल किया है ।

जिस प्रकार शरीर में पाप, आलस्य, विषय, विकार, रोग आदि भरे रहते हैं और मन को मल आवरण विक्षेप एवं कषाय–कल्मष दूषित करके उन्हें विकृत परिस्थितियों में डाले रहते हैं, उसी प्रकार तामसी–आसुरी तत्व वनस्पति अन्न, फल आदि में प्रवेश कर जाते हैं । उन्हें खाने से पशु और मनुष्यों की प्रवृत्तियाँ दुष्ट हो जाती हैं । पशुओं के दुग्ध, घृत आदि द्वारा वहाँ वनस्पतियों के दूषण मनुष्यों को प्रभावित करते हैं । वैसे भी अन्न, शाक आदि लोग खाते ही हैं । सूक्ष्म वातावरण का प्रभाव इस वनस्पति आहार को दूषित करके मनुष्यों के अन्तःकरण चतुष्टय में दुष्प्रवृत्तियाँ भर देता है और लोग अनायास ही कष्ट–क्लेशों से भरे शोक–संतापों में फँसते चले जाते हैं । इस तथ्य को

शतपथ ब्राह्मण में इस प्रकार कहा गया है–

ततोऽसुरा उभयीरोषधीर्याश्च मनुष्या उपजीवन्तिं याश्च पशवः कृत्ययेव त्वत् विषेणेव त्वत् प्रतिलिलिपुः उतैवं चिदेबानभि भवेमेति, ततो न मनुष्या आशुर्न पशव आलिलिशिरे ताहेमाः प्रजा अनाशकेन नोत्परावभवुः ।.....ते देवा ह्येचुर्हन्तेद मासामपिजिंघांसामेति, केनेति ? यज्ञे नैवेति ।

–शतपथ २/४, ३/२–२

असुरों ने उन समस्त औषधियों को मारक तत्व अथवा विष से मानो लिप्त कर दिया, जिसका उपयोग कर समस्त मानव व पशु अपना जीवन निर्वाह करते हैं, ऐसा करके उन्होंने यह सोचा कि इस प्रकार हम देवों को परास्त कर लेंगे, पर उन औषधियों को उस अवस्था में पशुओं ने न चुगा, उनका उपयोग न करने से समस्त प्रजा असुरों द्वारा पराजित न की जा सकी ।

इन अन्न वनस्पतियों में प्रविष्ट हुई स्थूल और सूक्ष्म असुरता का, विकृति, रुग्णता एवं दुष्टता का शमन करने के लिए यज्ञ अमोघ उपाय है । जिस प्रकार रुग्ण शरीर की चिकित्सा औषधियों से और विकृत मन की चिकित्सा सत्संग समाधान से होती है उसी प्रकार इस वनस्पति जगत में प्रविष्ट हुई अवांछनीयता का निराकरण यज्ञ करता है । रक्त शोधक औषधियों की तरह यज्ञ विधान को भी वनस्पति जगत की शुद्धि और परिपुष्टि का आधार कहा गया है । शतपथ ब्राह्मण ने इस रहस्य का उल्लेख इस प्रकार किया है ।

पृथ्वी का विषय गन्ध है । पृथ्वी सदा वायु से गन्धों का शोषण करके वायु को निर्गन्ध किया करती है । पृथ्वी के विकार रूप पशु, मनुष्य वृक्षादि स्थिर अथवा चंचल वायु की गन्ध सदा खींचते रहते हैं । सुगन्ध वायु कुछ मीलों तक चलने पर स्वयं निर्गन्ध हो जाती है । गन्ध से भारी होने के कारण यह सदा पृथ्वी के धरातल पर ही बहता है । ऊपर आकाश का सूक्ष्म वायु निर्गन्ध होता है इस प्रकार यज्ञ से हवन द्वारा बने अभीष्ट फलों के कारण व बीज रूप वाष्प, धुआँ व गन्ध को यज्ञ प्रदेश वाली पृथ्वी शोषण कर लेती है । पुनः अभीष्ट अन्न, फल, दुग्ध, सुख, प्रसाद आदि उत्पन्न कर उस प्रदेश को अर्पण करता है ।

एतेन वै तज्ञेनेष्ट्वोभयीनामोषधीनां याश्च मनुष्या उपजीवन्ति याश्च पशवः कृत्यामिव त्वत् विषमिव त्वत् अपजघ्नुः तत आशनन् मनुष्या आलिशन्त पशवः ।

इस यज्ञ के द्वारा ही उन समस्त औषधियों के स्वास्थ्यनाशक विष-प्रभाव को नष्ट कर लिया गया, जिनका उपयोग मनुष्य अथवा पशु करते हैं, परिणामस्वरूप मनुष्य उन अन्नादि औषधियों का उपयोग करने लगे और पशु भी चुगने लगे । यज्ञ के द्वारा वायु अथवा वातावरण की शुद्धि के लिए इससे अधिक और किस प्रमाण की आवश्यकता है । ब्राह्मण ग्रन्थों में इस प्रकार के प्रसंग अनेक स्थलों में हैं । इसके लिए आप गोपथ ब्राह्मण के उत्तर भाग (१।१९) और औषीतरि ब्राह्मण (५।१) को देख सकते हैं ।

प्रयुक्तया यथा चेष्टया राजयक्ष्मा पुरा जता ।
तां वेद विहिता मिष्टमारोग्यार्थी प्रयोजयेत् ।।

-चरक चि. स्थान अ. ८ श्लोक १२

जिस यज्ञ के प्रयोग से प्राचीन काल में राजयक्ष्मा रोग नष्ट किया जाता था, आरोग्य चाहने वाले मनुष्य को उसी वेद विद-विहित यज्ञ का अनुष्ठान करना चाहिए ।

शरीर रोगों पर यज्ञीय वातावरण का क्या प्रभाव हो सकता है और यह रोगों को रोकने अथवा उनका निराकरण करने में कहाँ तक सफल हो सकता है इसे देखने के लिए एक प्रयोग किया गया ।

काँच की बारह शीशियों को वैज्ञानिक ढंग से शुद्ध एवं स्वच्छ करके दो-दो शीशियों में दूध, मांस, फलों का रस आदि छः प्रकार की वस्तुएँ भरकर छः शीशियाँ उद्यान के उन्मुक्त वायुमण्डल में और छः शीशियाँ यज्ञीय वातावरण में रख दी गईं । कुछ समय बाद उद्यान के वायुमण्डल में रखी शीशियों की चीजों में सड़न पैदा होने लगी जबकि यज्ञीय वातावरण की शीशियों की वस्तुएँ शुद्ध बनी रहीं । उनमें सड़न तब प्रारम्भ हुई जब उद्यानीय वातावरण में रखी शीशियों की सारी चीजें सड़-गल गयीं । इस प्रयोग का परिणाम प्रकट करता है कि शुद्ध ओषजन युक्त वायु की अपेक्षा यज्ञीय वायु में रोगरोधक शक्ति अधिक होती है ।

प्रायः देखा जाता है कि जो व्यक्ति नियमपूर्वक नित्य प्रति हवन किया करते हैं, वे दूसरों की अपेक्षा अधिक नीरोग रहा करते हैं । इसका एक कारण जहाँ जीवन की नियमितता एवं भावना की पवित्रता है वहाँ एक वैज्ञानिक कारण यह भी है कि हवनकर्त्ता को नियमित रूप से यज्ञ-पूत वायु भी मिलती रहती है जो अपनी शक्ति से शरीरस्थ रोगाणुओं को नष्ट कर नये जीवाणुओं को प्रवेश करने से रोकती रहती है । इन प्रयोगों तथा अनुभवों के

आधार पर विश्वास किया जा सकता है कि अन्य उपचारों के साथ-साथ यदि यक्ष्मा आदि असहाय अथवा किसी अन्य प्रकार के जीर्ण रोगों से ग्रस्त व्यक्ति उपयुक्त औषधियों द्वारा नित्य हवन भी करते रहें तो निश्चय ही वे रोग मुक्त होकर आरोग्य लाभ प्राप्त कर सकते हैं ।

स्त्रियों के जटिलतम रोगों में यज्ञ को सफल उपचार के रूप में माना जाता रहा है । यही कारण है कि प्रत्येक भारतीय नारी को गर्भ धारण के पश्चात् अनिवार्य रूप से हवन करना पड़ता था । बन्ध्यत्व का अभी तक कोई सफल उपचार उपलब्ध नहीं हो पाया, पर यह सर्वविदित है कि प्राचीन काल में यहाँ सकाम यज्ञों में पुत्रेष्टि यज्ञों का महत्व सर्वाधिक रहा है । भगवान राम और भगवती सीता का जन्म यज्ञ के द्वारा ही हुआ था ।

मानसिक रोगियों के लिए तो यज्ञ का महत्व और भी अधिक होता है । सांस के साथ जो वायु भीतर जाती है, उसमें प्रायः २० प्रतिशत आक्सीजन और ०.३ प्रतिशत कार्बनडाई आक्साइड होती है । जब सांस छोड़ी जाती है तो उसमें ३ प्रतिशत कार्बनडाई आक्साइड और १६ प्रतिशत आक्सीजन रहती है ।

यदि किसी कारण शरीर को ऑक्सीजन कम मिले-अशुद्ध वायु मण्डल में उसका अंश कम हो अथवा शरीर की भीतरी स्थिति उसे कम मात्रा में सोख सके तो शारीरिक बीमारियों के अतिरिक्त मानसिक विकृतियाँ भी खड़ी हो जायेंगी । लड़खड़ाकर बोलना, आंत्रशोथ, चिड़चिड़ापन थकावट, भय एवं आशंका समलिंगी मैथुन, अभिलाषा जैसे मनोविकारों और स्नायविक असंतुलनों से ग्रसित वे लोग देखे गये हैं जिनके शरीर में आक्सीजन की कमी और कार्बनडाई आक्साइड की अतिरिक्त मात्रा पाई जाती है । कई बार आक्सीजन की अधिक मात्रा का शरीर द्वारा शोषण किया जाना भी हानिकारक होता है यद्यपि उसके लक्षण भिन्न प्रकार के होते हैं ।

वायु सन्तुलन की चिकित्सा पद्धति मानसिक रोगियों के लिए प्रयुक्त की जाती है । डा. लोवनहार्ट ने सन् १९२६ से ये प्रयोग प्रारम्भ किए थे । उन्होंने वैटेट्रेनिक शिजोफ्रेनियाँ के रोगियों पर कार्बनडाई आक्साइड के उपचार किए और आशाजनक परिणाम प्राप्त किए । इन सफलताओं से प्रभावित होकर सन् १९४७ में वान मेन्डुना ने साइकोन्यूरोसिस के मरीजों पर कार्बनडाई आक्साइड की मात्रा को उपचार का केन्द्र विन्दु मानकर

अपने प्रयोग किए । इसके सत्परिणामों को उन्होंने विस्तारपूर्वक सन् १९५० में निबन्ध रूप में प्रकाशित कराया ।

उन्होंने कई रोगियों को कार्बनडाई आक्साइड ३० प्रतिशत और आक्सीजन ७० प्रतिशत मिलाकर फेस मास्क उपकरण में भरी और उसमें साँस लेने की व्यवस्था की, रोगी २०–२५ बार इस कृत्रिम वायु में गहरी सांस लेते । एक दिन छोड़कर यह उपचार किया जाता । उस समय तो रोगी को घुटन अनुभव होती और चेहरे तमतमा जाते, पर पीछे उन्हें राहत मिलती । ऐसे २५ उपचारों के बाद रोगियों को काफी राहत मिली और उनकी अधिकांश व्यथाएँ दूर हो गयीं ।

आक्सीजन की समुचित मात्रा कोशिकाओं को किसी वजह से न मिले तो मस्तिष्कीय विकृतियाँ उत्पन्न होंगी । नवीनतम न्यूरोलॉजी शोध तरह–तरह के मनोविकारों का शमन करने के लिए कार्बनडाई आक्साइड की विभिन्न मात्राऐं देते हैं और रोग निवारण में सफलता प्राप्त करते हैं । अग्निहोत्र द्वारा उत्पन्न हुई कार्बनडाई आक्साइड ठीक इसी प्रकार का उपचार है जो प्रत्यक्ष में हानिकारक दीखते हुए भी अनेकों मानसिक रोगों के निवारण में इतना अधिक सहायक होता है जिसे देखते हुए थोड़ी–सी आक्सीजन का आग जलने से खर्च हो जाना कोई बड़ी हानि नहीं है ।

यज्ञ से रोग निवारण एवं बलसंवर्धन के दो लाभ

रोग उपचार की आवश्यकता पड़े इससे अच्छा यह है कि उनके उत्पन्न होने का अवसर ही न आये । इसके लिए सर्वोत्तम उपाय तो यही है कि आहार–विहार में सात्विकता की सुव्यवस्था का उपयुक्त समावेश रखा जाय । प्रकृति के अनुरूप आचरण करके सभी प्राणी शारीरिक आनन्द का लाभ उठाते हैं । रोग एक विकृति है जो जीवन–यापन की मर्यादाओं का उल्लंघन करने पर प्रकृति के दण्ड विधान द्वारा मनुष्य के ऊपर आ बरसती है । शारीरिक और मानसिक क्षमताओं का दुरुपयोग न किया जाय, उन्हें सही दिशा में नियोजित रहने दिया जाय तो न आधि–व्याधियों के संकट शरीर मन को सहने पड़ेंगे और न कर्म विधायक कारणों से आये दिन त्रास देने वाली विपत्तियों का सामना किसी को करना पड़ेगा । हमारी अपनी दुर्बुद्धिजन्य उच्छृंखलता ही है जो उलटकर हमला करती है और इसी प्रत्याक्रमण के फलस्वरूप शरीर को पीड़ा, मन को क्षोभ और अन्तःकरण को आत्म–प्रताड़ना का त्रास सहना पड़ता है ।

इन विपत्तियों की जड़ काटने के लिए यज्ञीय तत्वज्ञान का वह पक्ष प्रस्तुत किया गया है, जिससे नीतिकर्म, सदाचार, स्नेह, सहयोग की रीति–नीति को हृदयंगम कराने का प्रयत्न किया जाता है । यज्ञ का तत्वज्ञान पवित्रता और उदारता का, चरित्रनिष्ठा और समाज–निष्ठा का प्रबल प्रतिपादन करता है, उसमें प्रयुक्त होने वाले सभी मंत्रों विधि–विधानों एवं कर्मकाण्डों में यही सन्देश, निर्देश आदि से अन्त तक भरा पड़ा है । दान, देव पूजन, संगतिकरण यह तीन अर्थ यज्ञ शब्द के होते हैं । इन्हें प्रकारान्तर से उदारता, उत्कृष्टता और सहकारिता की दिशा–धारा कहा जा सकता है । उन्हें अपनाने वाला यज्ञीय दर्शन को हृदयंगम करने वाला कोई भी व्यक्ति इसी जीवन में स्वस्थ, समृद्ध, समुन्नत एवं सुसंस्कृत रह सकता है । उसे आन्तरिक प्रसन्नता एवं बहिरंग सम्पन्नता की कमी नहीं रहती ।

यज्ञ कृत्य करने, कराने, उसमें किसी भी रूप में सम्मिलित रहने वालों को प्रत्येक विधि–विधान की व्याख्या करते हुए यह समझाया जाता है कि उसका चिन्तन एवं चरित्र, दृष्टिकोण एवं व्यवहार निरन्तर उत्कृष्टता की ओर बढ़ना चाहिए । यज्ञ कृत्य के उद्गाता यही गाते हैं, अध्वर्यु यही सिखाते हैं । ब्रह्मा इसी को मोड़ना बताते हैं और आचार्य को ऐसी व्यवस्था बनानी पड़ती है कि इसी प्रकार का भाव प्रवाह उस समूचे वातावरण पर छाया रहे । यज्ञ में प्रयुक्त होने वाले हविष्य, मंत्रों एवं विधि–विधान का अपना स्वतंत्र महत्व है । उसमें वैज्ञानिक तथ्यों का भरपूर समावेश है, किन्तु उससे भी बड़ी बात यह नीति दर्शन है जो उस पुनीत धर्मानुष्ठान के साथ–साथ प्रत्येक याजक को समझाया, हृदयंगम कराया जाता है । यह भावोपचार प्रकारान्तर से सर्वतोमुखी सुख–शान्ति का पथ प्रशस्त करता है । जिसमें शारीरिक और मानसिक रोगों के सिद्धान्त भी सम्मिलित हैं ।

रोगोपचार का यह प्रथम चरण है । उसे जड़ काटने की प्रक्रिया कहा जा सकता है । नीतिवान को रुग्णता का दण्ड प्रायः नहीं भुगतना पड़ता । उसे निरोग, बलिष्ठ एवं दीर्घजीवी बनने का आनन्द अनायास ही उपलब्ध होता रहता है ।

द्वितीय चरण में वह उपचार प्रक्रिया आरम्भ होती है । जिसमें रोगों के उत्पन्न होने की सम्भावना के समय से पहिले ही रोकथाम कर ली जाती है । यज्ञीय ऊर्जा की निकटता से यह प्रयोजन भली प्रकार पूरा होता है । यज्ञशाला के वातावरण में रोग–निरोधक तत्व प्रचुर मात्रा में रहते हैं । जो उधर बैठते हैं उनके शरीर छिद्रों में होकर वह ऊर्जा

भीतर प्रवेश करती है और जहाँ भी विजातीय, अनुपयुक्त, द्रव्यनिष्ठता है, उसे निरस्त करती है । रोकथाम का यह उपचार प्रायः वैसा ही समझा जाता है, जैसा कि विभिन्न रोगों के आक्रमण की आशंका होने पर सुरक्षात्मक टीके लगाये जाते हैं । बच्चों को चेचक के टीके सरकारी स्वास्थ्य-विभाग के कर्मचारियों द्वारा घर-घर पहुँच कर लगाये जाते हैं । मेले'-ठेलों में जाने वालों को अनिवार्य रूप से हैजे के टीके लगाये जाते हैं । अन्यान्य बीमारियाँ, महामारियाँ फैलने की आशंका होती है तो सामयिक टीके लगाने के लिए सरकारी स्तर पर दौड़-धूप की जाती है । मनुष्य की ही तरह पशुओं को भी बीमारियों के यह सुरक्षात्मक टीके लगाये जाते हैं । कुओं में दवा डालने, घरों में डी. डी. टी. छिड़कने, नालियों पर चूना डालने, फिनायल से धोने, धूप जलाने, जैसे उपचार प्रायः इसी प्रयोजन के लिए काम में लाये जाते हैं । यज्ञ में यह सामर्थ्य असाधारण रूप से पाई जाती है । उसमें खाने, लगाने, छिड़कने आदि की कोई प्रत्यक्ष प्रक्रिया कार्यान्वित नहीं करनी पड़ती । वरन् उत्पादित ऊर्जा की प्रखरता ही उस वातावरण में बैठे हुए मनुष्यों को विशिष्ट रूप से और उस क्षेत्र में रहने वालों को सामान्य रूप से इतना लाभ पहुँचाती है कि उनकी काया में रोग निरोधक सामर्थ्य बढ़ी-चढ़ी मात्रा में उत्पन्न हो सके ।

यज्ञ प्रक्रिया को प्रत्येक पर्व पर सामूहिक रूप से सम्पन्न करने का विधान है । इसमें उसका प्रभाव क्षेत्र रोग-निरोधक सामर्थ्य से भर जाता है । प्रत्येक मनुष्य को सोलह बार व्यक्तिगत रूप से यज्ञ सान्निध्य से विशिष्ट लाभ उठाने की धर्म परम्परा प्रचलित है । इसे षोडश संस्कार पद्धति कहा जाता है । माता के गर्भ में पहुँचते-पहुँचते यह उपचार आरम्भ हो जाते हैं । सीमन्त और पुंसवन संस्कार गर्भवती और गर्भावस्था में रहने वाले भ्रूण के लिए सुरक्षात्मक उपचार समझे जाते हैं । विदेश जाने के समुद्री जहाज पर, वायुयान पर चढ़ने से पूर्व कई प्रकार के टीके लगवाने पड़ते हैं, ताकि किसी देश के रोग ग्रस्त नागरिक दूसरे देश में पहुँच कर अपनी छूत न फैला सकें । गर्भावस्था एक देश है और बाहरी दुनियाँ दूसरा । इसे भी एक देश माना समझा जा सकता है । अपनी दुनियाँ में आने देने से पहले यदि मनुष्य लोक के निवासी नवागन्तुक को टीके लगाकर आने के लिए कहते हैं तो उसमें कुछ भी अनुचित नहीं है । सीमन्त और पुंसवन संस्कारों का एक पक्ष यह भी है । यों इसके अतिरिक्त भी उसके बौद्धिक एवं भावनात्मक प्रयोजन और भी हैं ।

जन्म के बाद जात-कर्म, नामकरण, अन्नप्राशन, मुण्डन, विद्यारम्भ, यज्ञोपवीत आदि कई संस्कार हैं जो बचपन की आयु में जल्दी-जल्दी सम्पन्न किए जाते रहते हैं । इन सब में यज्ञ अनिवार्य है । इससे बालक को उसके निरन्तर सम्पर्क में आने वाले माता-पिता को सम्मिलित होना पड़ता है । इसे शारीरिक एवं मानसिक विकृतियों के उत्पन्न होने की आशंका का पूर्व निराकरण कहा जा सकता है ।

आयु बढ़ने के साथ-साथ मनुष्य की अपनी निज की समर्थता बढ़ती है । ऐसी दशा में सुरक्षात्मक उपचार उतनी जल्दी-जल्दी करने की अनिवार्यता नहीं रहती । फलतः आगे के संस्कारों का यह अन्तर बढ़ता जाता है । समापन विवाह, वानप्रस्थ संस्कारों के बीच कई-कई वर्ष का अन्तर रहता है । इन सभी संस्कारों में न केवल संस्कारित बालक या व्यक्ति को यज्ञीय सुरक्षा पद्धति से प्रभावित किया जाता है वरन् समूचे परिवार को यह लाभ मिलता है । घरों में समय-समय पर यज्ञ-हवन होते रहने पर उनके हर कोठे कमरे में यज्ञ-धूम्र पहुँचता है और उससे जहाँ-तहाँ छिपे बैठे कृमि-कीटकों को निरस्त करने में भारी सहायता मिलती है ।

यज्ञ प्रक्रिया का स्वास्थ्य सम्बन्धित लाभ यह भी है कि उसकी ऊर्जा परिवार की स्वस्थता में मूल्यवान सहायता प्रस्तुत करती है । संस्कारों को पारिवारिक और पर्वों को सामूहिक स्वास्थ्य-सुरक्षा का एक उपयोगी उपाय माना गया है । कभी-कभी मनुष्यों और पशुओं में बीमारियाँ फैलती हैं, तो उनके निराकरण के लिए यज्ञ-आयोजन किए जाते हैं । इससे न केवल उस घर-मुहल्ले को वरन् उस क्षेत्र में निवास करने वाले मनुष्यों एवं अन्य प्राणियों को स्वास्थ्य संकट से बचने का लाभ मिलता है ।

होली का वार्षिक यज्ञ बड़े रूप में मनाने की परम्परा है । इसमें फसल को संस्कारित किया जाता है । खाद्य पदार्थों को गरम करके खाने की प्रथा इसलिए भी है कि उनमें कुछ विकृतियाँ जुड़ी हों तो उसका निराकरण हो सके । डाक्टर इन्जेक्शन की सुई, आपरेशन के औजार प्रयुक्त करने से पहिले उन्हें गरम कर लेते हैं । इसका उद्देश्य उसके साथ किसी प्रकार जुड़ गये विषाणुओं को हटाना है अन्यथा वे शरीर में पहुँचकर कोई नया संकट खड़ा कर सकते हैं । ठीक इसी प्रकार फसल पक कर आने पर नवान्न का उपयोग करने से पूर्व उसे यज्ञीय ऊर्जा से प्रभावित किया जाता है । इससे उसकी विशिष्टता बढ़ जाती है । कहीं कोई अनुपयुक्त तत्व इस अन्न के साथ मिले होंगे तो उन्हें सफलतापूर्वक

हटाया जा सकेगा । यहाँ यह स्मरण रखा जाना चाहिए कि इन पंक्तियों में स्वास्थ्य प्रकरण की चर्चा हो रही है । इसलिए यज्ञ-प्रक्रिया के उन्हीं लाभों पर प्रकाश डाला जा रहा है, जो स्वास्थ्य से सीधे सम्बन्धित हैं । इसका तात्पर्य किसी को यह नहीं मान लेना चाहिए कि मात्र स्वास्थ्य संरक्षण ही यज्ञ का एक मात्र उद्देश्य है । उसके असंख्य लाभ हैं । उससे समूचे वातावरण में उत्कृष्टतता के दैवी तत्वों का संवर्धन होता है । फलतः प्राणियों की सर्वतोमुखी प्रगति का पथ प्रशस्त होता है ।

रोग आने से पूर्व दुर्बलता का आगमन उसी प्रकार होता है जैसे सूर्य के निकलने से पूर्व ऊष्मा का उदय होता है । दुर्बलता अपने आप में एक विपत्ति है । उसके कारण भीतर से रुग्णता उपजती और बाहर से बरसती देखी जाती है । दुर्बलता का प्रदर्शन होने देना, होने पर उसे हटाने में जुट जाना रोगों से बचे रहने की सुनिश्चित गारण्टी है । दुर्बलता निवारण के लिए जो उपाय अपनाने पड़ते हैं उनमें से एक यज्ञीय माध्यम से पुष्टाई को सूक्ष्मीकरण विधि से शरीर के अन्तराल में पहुँचाना है । यज्ञ में मात्र रोगनाशक औषधियाँ ही नहीं होमी जाती वरन् पौष्टिक शाकल्य का भी यजन होता है । घी, शक्कर, मेवा बलवर्धक औषधियों का भी बहुत बड़ा भाग हविष्य में रहता है । इनकी ऊर्जा रोग निवारण का ही नहीं बलवर्धन का अतिरिक्त प्रयोजन भी पूरा करती है । यज्ञ सान्निध्य से बढ़ने वाली समर्थता शरीर को ओजस्वी, मस्तिष्क को मनस्वी और अन्तःकरण को तेजस्वी बनाती है । तीनों शरीरों का यह त्रिविध बलवर्धन है । जिस प्रकार नासिका से लेकर शरीर के अन्यान्य छिद्रों द्वारा शरीर में यज्ञ ऊर्जा पहुँच कर रोग निवारण करती है ठीक उसी प्रकार उस आधार पर यज्ञ माध्यम से पुष्टाई का सूक्ष्मीकरण शरीर में प्रवेश करता है तो उससे बहुमूल्य पौष्टिक पदार्थ खाने से कुछ अधिक ही लाभ मिल जाता है । अधिक इसलिए कि उसके प्रवेश एवं पाचन में तनिक भी कठिनाई नहीं होती । पौष्टिक पदार्थों को खरीदने का ही नहीं पचाने का भी सवाल है । पेट की सामर्थ्य न हो तो गरिष्ट पौष्टिक पदार्थ पच नहीं सकेंगे । उल्टा अपच उत्पन्न करेंगे और उन्हें हटाने में शरीर को अनावश्यक श्रम करना पड़ेगा । इस प्रकार लाभ के स्थान पर उल्टी हानि सहनी पड़ती है । पैसा खर्च नहीं होता वरन् शरीर पर अनावश्यक दबाव पड़ने से संचित सामर्थ्य से भी हाथ धोना पड़ता है ।

यज्ञ द्वारा शरीर में पुष्टाई पहुँचाने का तरीका जितना सरल है उतना

ही प्रभावी भी । अत्यधिक दुर्बलता बढ़ जाने पर पाचन तंत्र काम नहीं करता, तब नस के माध्यम से ग्लुकोज शरीर में पहुँचाया जाता है । दूध पीने का अपना लाभ है पर छोटे से मिल्क इन्जेक्शान से वह काम अत्यधिक परिमाण में मिल जाता है । विटामिन खाद्य पदार्थों में घुले रहते हैं पर उन्हें प्रथक से निकाल कर तनिक–सी मात्रा में खाने पर प्रायः वैसा ही लाभ मिल जाता है । ढेरों फलों के खाने की अपेक्षा उनका रस पीने से पेट पर भार कम पड़ता है और लाभ उतना ही मिलता है । अन्यान्य पौष्टिक खाद्यान्नों का सार तत्व अब रसायनशालायें बनाने लगी हैं और उनसे दुर्बल पाचन तंत्र वाले अस्वस्थ असमर्थ व्यक्ति भी अपनी जीवनी शक्ति बनाये रहने का काम लेने लगे हैं । यज्ञ माध्यम से सूक्ष्मीकृत पुष्टाई को अपेक्षाकृत अधिक सरलतापूर्वक शरीर में पहुँचाया और पचाया जा सकता है ।

सूक्ष्मीकरण से शक्ति का विस्तार होता है । इस तथ्य को होम्योपैथी के पोटेन्सी विस्तार सिद्धान्त को पढ़कर अधिक अच्छी तरह समझा जा सकता है । डी. शेन की दवाओं में साधारण जड़ी–बूटियों को अधिक पिसाई करके उनकी आणविक ऊर्जा को उभारा जाता है और वे अपेक्षाकृत अधिक लाभदायक सिद्ध होती हैं । सूक्ष्मता का अपना एक स्वतंत्र दर्शन है जिसमें वस्तुओं की अदृश्य स्थिति का ही प्रतिपादन नहीं वरन् यह सिद्धान्त भी सम्मिलित है कि 'स्थूल' के अन्तराल में छिपा हुआ 'सूक्ष्म' किस प्रकार असंख्य गुना सामर्थ्यवान होता है । परमाणु और जीवाणु जैसी नगण्य इकाइयों के अन्तराल में काम करने वाली नाभिकीय क्षमता का आभास और मूल्यांकन बुद्धि को हतप्रभ बना देता है । स्थूल, ढेला और सूक्ष्म शरीर विस्तार की दृष्टि से बड़े भले ही हों पर उसकी वास्तविक सामर्थ्य देखनी हो तो उस अन्तरंग को कुरेदना पड़ेगा जो आँखों के लिए अदृश्य होते हुए भी सामर्थ्य की दृष्टि से नितान्त अद्भुत है । पुष्टाई के लिए प्रयुक्त होने वाले पदार्थों का रासायनिक विश्लेषण शोधनकर्त्ताओं ने बहुत पहले से ही जान लिया है । वह निष्कर्ष सर्व साधारण को उपलब्ध है । इनकी सूक्ष्म सामर्थ्य के क्षेत्र में प्रवेश किया जाय तो पता चलेगा कि उस अदृश्य का यदि उपयोग सम्भव हो सके तो अणु शक्ति की तरह ही खाद्य पदार्थों का स्तर भी हर दृष्टि से अद्भुत बन सकता है । सामान्य खाद्यों को सूक्ष्मता के आधार पर असाधारण– शक्ति सम्पन्न बनाया जा सकता है और उसका लाभ अब की अपेक्षा असंख्य गुना

उठाया जा सकता है, तब सामान्य खाद्य पदार्थ भी उच्चस्तरीय औषधि की भूमिका निभा सकते हैं ।

राजा दशरथ के यहाँ सम्पन्न हुए पुत्रेष्टि यज्ञ में चरु बनाया गया था । उस खीर के पहिले दो हिस्से किए गये । यज्ञ पुरोहित श्रृंगी ऋषि को जानकारी थी कि दो रानियाँ हैं इसलिए उनने चरु को दो हिस्सों में बाँट दिया, पीछे स्मरण दिलाया गया कि रानियाँ तीन हैं, तब उन्होंने भूल सुधारी और दो खण्डों में विभाजित खीर में से थोड़ा अंश निकाल कर तीसरा भाग बनाया । तीनों रानियों ने उसे सेवन किया छोटी सुमित्रा के हिस्से में वह दो भाग मिलाकर एक बनाया गया भाग आया । दो रानियों को एक-एक संतान हुई पर सुमित्रा को दो सन्तानें हुं । यह चरु की सूक्ष्म विशेषता का विवरण है । उसे चमत्कारी औषधि कहा जा सकता है । वैसे देखने में वह खीर भर थी । यज्ञ प्रक्रिया की सूक्ष्म क्षमता का समावेश हो जाने से वह सामान्य-सा खाद्य पदार्थ असाधारण शक्ति सम्पन्न बन गया था ।

यज्ञ भस्म यों अधिक से अधिक कोई मांगलिक पदार्थ माना जा सकता है, पर कई बार उसके उपयोग से बहुमूल्य औषधियों से भी अधिक प्रभाव परिणाम निकलता देखा गया है । उसे पौष्टिक खाद्य पदार्थ के रूप में स्वास्थ्य संवर्धन के लिए भी प्रयुक्त किया जा सकता है । सूक्ष्म सामर्थ्य से सम्पन्न यज्ञ भस्म-चरु अथवा कोई भी पदार्थ इतने अधिक बलवर्धक हो सकते हैं कि उनकी तनिक भी मात्रा गाड़ी भर पौष्टिक खाद्य पदार्थों की समता कर सके । सघन वन प्रदेशों के निवासी, हिमाच्छादित गुफाओं में रहने वाले तपस्वी सिद्ध पुरुष अपने आहार की समस्या पदार्थों की सूक्ष्म सामर्थ्य के सहारे ही हल करते हैं ।

यज्ञ विज्ञान आरोग्य साधन से सम्बन्धित दो भागों में विभक्त है । एक रोग निवारण दूसरा बलवर्धन । दोनों की उपयोगिता आवश्यकता महत्ता एक-दूसरे से बढ़-चढ़कर है दोनों के सम्बन्ध से ही स्वास्थ्य समस्या का समाधान होता है अतएव हविष्य में रोग निवारक औषधियाँ तथा बलवर्धक पुष्टाई का सन्तुलित रूप से समावेश किया जाता है । उसके प्रभाव से न केवल शारीरिक वरन् मानसिक समर्थता का भी संवर्धन होता है ।

उपरोक्त पंक्तियों में यज्ञ से आरोग्य की उभयपक्षीय आवश्यकताएँ पूरी होने के सामान्य उपक्रम पर प्रकाश डाला गया है । अमुक रोग में अमुक वस्तुओं के सहारे हवन करके तदनुरूप ऊर्जा उत्पन्न करना यह

यज्ञ चिकित्सा का प्रकरण है । इस दिशा में पुरातन काल के तत्वदर्शी वैज्ञानिकों ने गम्भीर अनुसंधान किए थे और ऐसे विधि-विधान खोज निकाले थे जिनके सहारे व्यक्ति विशेष पर चिकित्सा के लिए तदनुरूप विशेष यज्ञ उपचार का प्रभाव हो सके । इस पद्धति का उपयोग औषधि सेवन के साथ-साथ भी चलता रह सकता है ।

यज्ञ चिकित्सा का प्रचलन प्राचीन काल में बहुत था । गुरुकुलों और आरण्यकों के साथ-साथ चिकित्सालय भी चलते थे । जिनमें आहार-विहार के सामान्य विधि-विधान के साथ-साथ आरोग्य लाभ के लिए विशिष्ट औषधियों का हविष्य, विशिष्ट समिधाओं का उपयोग, विशेष पशु का घृत, विशेष कर्मकाण्डों का समावेश करते हुए अमुक रोग की चिकित्सा की जाती थी और सफल भी होती थी । उस पद्धति का सर्वांगपूर्ण विधि-विधान तो इन दिनों उपलब्ध नहीं है, पर जहा-तहाँ मिलने वाले उल्लेखों से पता चलता है कि किसी समय यज्ञोपचार प्रौढ़ता की स्थिति में रहा होगा और उसके माध्यम से सर्वसाधारण को लाभ मिलता रहा होगा । सर्व विदित है कि मध्यकाल में आततायी आक्रामकों द्वारा बहुमूल्य ज्ञान सम्पदाओं के भण्डार पुस्तकालय होली बनाकर जलाये गये थे । सम्भवतः यज्ञोपचार का महत्वपूर्ण अंश उसी दावानल में कहीं जल गया होगा । जो हो अब उस संदर्भ में नये सिरे से खोज करने की आवश्यकता है । प्रयत्न किया जाय तो यह अनुसन्धान कुछ अधिक कष्ट साध्य नहीं होगा । कारण यह है कि इस सन्दर्भ में पहिले से ही बहुत कुछ किया जाता रहा है और प्रगति के ऊँचे शिखर पर पहुँचने का कार्य पहले से ही सम्पन्न हो चुका है । दो ही कार्य ऐसे हैं जो नये सिरे से होंगे एक तो बीच-बीच की कड़ियाँ टूटकर लुप्त हो गई हैं, जहाँ तहाँ के टुकड़े ही उपलब्ध होते हैं । उन्हें नये क्रम से जमाना और जो कड़ियाँ गुम हो गई हैं उन्हें फिर से ढालना जमाना । दूसरा यह कि प्राचीन काल की तुलना में इन दिनों मनुष्यों और वनस्पतियों की स्थिति में जो अन्तर आया है उसे ध्यान में रखते हुए ऐसे उपक्रम तैयार करना जो प्रस्तुत परिस्थितियों में अपनी प्रामाणिकता और सार्थकता सिद्ध कर सकें । इस दृष्टि से किए गये अनुसंधानों पर यदि गम्भीरतापूर्वक जुट जाया जाय तो निश्चित ही चिकित्सा की एक ऐसी सर्वांगपूर्ण पद्धति का विकास हो सकेगा जो प्रचलित सभी उपचार पद्धतियों को पीछे छोड़कर अपनी विशिष्टता सिद्ध कर सके । यज्ञ चिकित्सा में शारीरिक, मानसिक एवं

आत्मिक क्षेत्र की सभी विकृतियों के निराकरण की पूरी-पूरी सम्भावना है । ऐसी दशा में पुनर्जीवन प्राप्त करके अगले दिनों इस उपचार पद्धति का आविर्भाव मानवी सौभाग्य की अभिनव उपलब्धि माना जा सकेगा ।

ब्रह्मवर्चस् में इसके लिए एक साधन सम्पन्न प्रयोगशाला स्थापित की गई है जिसके आधार पर प्राचीन मान्यताओं को विज्ञान सम्मत स्वरूप में प्रस्तुत किया जा रहा है ।

यज्ञोपचार की स्वास्थ्य संरक्षण प्रक्रिया

औषधियों को वाष्पी भूत बनाकर उन्हें अधिक सूक्ष्म एवं प्रभावशाली बनाने की प्रक्रिया आयुर्वेद के विज्ञानी चिरकाल में अपनाते रहे हैं । उसके द्वारा अपेक्षाकृत अधिक सफलता भी मिलती रही है । पाचन तंत्र माध्यम से अथवा रक्त प्रवाह में सम्मिलित करके औषधि उपचार की पुरातन परिपाटी में जब वाष्पीकरण की नई पद्धति का समावेश हुआ तो उसके आश्चर्यजनक परिणाम निकले ।

यज्ञोपचार इसी स्तर की स्वास्थ्य संरक्षण प्रक्रिया है । उससे आत्मिक प्रगति के उच्चस्तरीय सत्परिणामों के अतिरिक्त प्रत्यक्ष एवं तात्कालिक लाभ रोग निवारण का भी मिलता है । इसमें कुछ विशेष नहीं करना पड़ता । रोग के अनुरूप औषधियाँ हवन करने और उस उत्पादित ऊर्जा के निकट रोगी को बिठाने से काम चल जाता है । यज्ञ में न्यूनमत वस्त्र धारण करके बैठने का विधान है । आमतौर से कटिवस्त्र के रूप में धोती और वक्षस्थल ढका रहने के लिए दुपट्टा धारण करना ही पर्याप्त समझा जाता है । भारी मोटे कसे हुए वस्त्र पहिन कर यज्ञ कर्म में बैठने का निषेध है । कारण कि यज्ञीय ऊर्जा द्वारा शरीर के अवयवों को अधिक लाभान्वित होने का अवसर तभी मिल सकता है जब वे खुले रहें । वस्त्र धारण करना ही पड़े तो वह इतना झीना एवं हल्का होना चाहिए कि उपयोगी उपचार का काम लेने में त्वचा छिद्रों को किसी व्यवधान का सामना न करना पड़े ।

यज्ञ चिकित्सा में भी रोग निदान की वैसी ही आवश्यकता पड़ती है जैसी अन्य पद्धतियों में चिकित्सक को रोगों के कारण जानने के लिए निदान करना पड़ता है । शरीर में कुछ उपयोगी वस्तुएँ कम पड़ जाने एवं कुछ अनुपयोगी वस्तुएँ बढ़ जाने से रोग उत्पन्न होते हैं । इसी कमी को पूरा करने एवं विष संचय को बहिष्कृत करने के लिए सभी

चिकित्सक अपने-अपने ढंग से उपाय करते हैं । यही यज्ञ चिकित्सा में भी करना पड़ता है । देखना होता है कि शरीर की रोग निरोधक शक्ति को बढ़ाने के लिए समर्थता देने वाली क्या पुष्टाई आवश्यक है और उसे कितनी मात्रा में किन पदार्थों के द्वारा शरीर में पहुँचाया जा सकता है । देखना होता है किस अवयव में किस स्तर का कितना विष द्रव्य जमा हो गया है । उसे बाहर निकालने के लिए किस प्रकार की ऊर्जा उत्पन्न की जाय और उसे उपयुक्त स्थान तक पहुँचाने के लिए किस उपाय का अवलम्बन किया जाय ।

हवन सामग्री किस रोगी के लिए किस स्तर की प्रयुक्त की जाय इसमें भिन्नता रखनी पड़ती है । सामान्य यज्ञ सबके लिए सामान्य रूप से उपयोगी है । माता के दूध की तरह हर बालक की तरह हर याजक समान रूप से उपयोग कर सकता है । उससे किसी प्रकार की हानि की सम्भावना नहीं है । हर स्तर की दुर्बलता एवं रुग्णता में उससे लाभ ही होता है । यह सामान्य सर्वजनीन-हर परिस्थितियों के अनुकूल उपचार हुआ । यहाँ तक यज्ञ विधान के साथ जुड़ा हुआ सामान्य संरक्षक विज्ञान ही काम करता है । इससे आगे का कदम सामयिक एवं विशिष्ठ है । उसे रोगी की स्थिति को देखते हुए उठाना पड़ता है । हर रोगी को उनकी स्थिति के अनुरूप दवा दी जाती है उसी प्रकार रोग विशेष को ध्यान में रखते हुए रोगी की स्थिति का गहन पर्यवेक्षण करते हुए यह निर्णय करना होता है कि किस स्तर की ऊर्जा उत्पन्न की जाय और उसके उत्पादन के लिए किन पदार्थों का यजन किया जाय ।

इस दृष्टि से हर विशिष्ट रोगी के लिए विशिष्ट हविष्य का निर्धारण करना होता है । इसमें दोनों ही स्तर की हवन सामग्रियों का सन्तुलन बिठाया जाता है । बलवर्धक और रोग निवारक दोनों ही तत्वों का संतुलन रखना होता है । कुनैन का सेवन कराते समय रोगी को दूध की मात्रा बढ़ा लेने के लिए कहा जाता है । ताकि उसके कारण उत्पन्न होने वाली गर्मी का शमन करने का उद्देश्य पूरा हो सके । दुर्बल रोगियों को फलों का रस सुपाच्य पोषण से युक्त आहार का निर्देश किया जाता है । दुर्बलता बढ़ने न देना सशक्तता बनाये रखना भी एक महत्वपूर्ण काम है । विजातीय द्रव्य के निवारण में मारक तत्वों का उपयोग करने की तरह ही इस पोषण की भी आवश्यकता पड़ती है । यज्ञ चिकित्सा के अनुसार रोगी को इन दोनों की आवश्यकता को पूरा कर सकने योग्य सामग्री का

निर्धारण करना होता है । इसके लिए पदार्थों की रासायनिक संरचना का ज्ञान आवश्यक है । उसमें दूसरे तत्वों के साथ सम्मिश्रण के प्रभाव का भी ज्ञान होना चाहिए । प्रयोगशालाओं में टाइट्रेशन इसी के लिए होते हैं कि दो पदार्थों के मिलने की प्रक्रिया का सही ज्ञान हो सके । नीला व पीला रंग मिलाकर हरा रंग हो जाता है । मूल द्रव के लक्षण ही अन्तर्ध्यान हो जाते हैं । यज्ञ चिकित्सक को हविष्य निर्धारण करते समय, चूर्ण बनाते समय मात्रा की भिन्नता न्यूनाधिक्य तथा औषधियों के सम्मिश्रण आदि का पूरा ध्यान रखना होता है, जिससे उसका रोगी की स्थिति देखते हुए लाभदायक उपयोग हो सके ।

हविष्य चार भागों में विभक्त है । (१) औषधियों का सम्मिश्रण (२) घृत (३) समिधाएँ (४) पूर्णाहुति में होमे जाने वाले विशिष्ठ पदार्थ । इन चारों के पृथक-पृथक गुण एवं प्रभाव हैं । आम तौर से गौघृत प्रयुक्त होता है, पर अन्य पशुओं के घृतों की भी विशिष्टता है और रोगी की स्थिति को देखते हुए घृतों में पाये जाने वाले रासायनिक पदार्थों की स्थिति का तालमेल बिठाते हुए यह निर्धारण करना होता है कि अमुक रोग में किस पशु का घृत लिया जाय ।

हविष्य में रोग विशेष के लिए प्रयुक्त होने वाली औषधियों का आधार प्रायः वही रहता है जो रासायनिक विश्लेषणों के आधार पर चिकित्सा विज्ञानी चिर काल से करते आये हैं । इस निर्धारण में नये संशोधनों का भी ध्यान रखना पड़ता है । जिस प्रकार संविधान कानून आदि में सामयिक आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए परिवर्तन किए जाते हैं, प्रथा परम्पराओं में हेर-फेर होते हैं उसी प्रकार प्रयोग एवं अनुभव के आधार पर किसी औषधि के प्रभाव के सम्बन्ध में भी यह उखाड़-पछाड़ होती रहती है । पूर्व निर्धारण में हेर-फेर तो नहीं करना है, ऐसा होता भी है । प्राचीन काल में जिस औषधि का जो प्रभाव माना जाता था अब खोज ने पुरातन मान्यता को बदलने और नया निर्धारण करने की विवशता उत्पन्न की है । कुशल चिकित्सकों को, औषधि निर्माताओं को इन नवीन परिवर्तनों को ध्यान में रखना होता है । इसी प्रकार यज्ञीय हविष्य में किन औषधियों का समावेश किया जाय यह ध्यान में रखना होता है । औषधि और अनुपान दोनों का अपना महत्व है । एक औषधि को एक अनुपान के साथ सेवन करने का एक प्रभाव होता है किन्तु उसी का अनुपान बदल देने से दूसरा गुण उत्पन्न हो जाता है । इस तथ्य को

ध्यान में रखते हुए हविष्य में पोषक और निरोधक पदार्थों का चयन और मात्रा का निर्धारण करना होता है ।

समिधाएँ भी प्रकारान्तर से हविष्यान्न ही हैं । लकड़ी का जलना भी औषधि यजन की तरह ही प्रभावोत्पादक होता है । लकड़ी में भी न्यूनाधिक मात्रा में उपयोगी अनुपयोगी रासायनिक पदार्थ रहते हैं । हविष्य में मात्र वनस्पतियों की पत्तियाँ, फूल-फल ही नहीं होते वरन् वृक्षों की लकड़ियाँ भी कूट-पीसकर मिलाई जाती हैं । चन्दन, देवदारु, अगर, तगर आदि की लकड़ियों का चूरा भी हवन सामग्री में मिलता है । इन का प्रभाव भी अन्य औषधियों के समतुल्य ही होता है । अस्तु, समिधाओं में कुछ नियत वृक्षों के काष्ठ उपयोग करने का ही विधान है । चाहे जिस पेड़ की लकड़ी हवन में प्रयुक्त नहीं हो सकती । चिकित्सक को इन सभी बातों का ध्यान रखना होता है और रोगी की स्थिति ध्यान में रखते हुए हविष्य के साथ-साथ समिधाओं का निर्धारण भी करना होता है ।

पूर्णाहुति में सामान्य हवन सामग्री का नहीं वरन् किन्ही विशिष्ट वस्तुओं का प्रयोग करना पड़ता है । पूर्णाहुति तीन भागों में विभक्त है । (१) स्विष्टकृत होम-जिसमें मिष्ठान्न होमा जाता है । (२) पूर्णाहुति-जिसमें फल होमना होता है । (३) वसोधारा-जिसमें घृत की धारा छोड़ी जाती है । इन तीनों कृत्यों को मिलाकर पूर्णाहुति कही जाती है । इस विधान को प्रधान तथा पोषक प्रयोग के रूप में किया जाता है । निरोधक सामग्री तो हविष्य के रूप में इससे पूर्व ही यजन हो चुकी होती है । मिष्ठान्न क्यों दिया जाय ? उसे बनाने में क्या-क्या पदार्थ लिए जायें यह भी यज्ञीय विधान का एक अंग है । शक्कर, चीनी, मिश्री, मिठाई आदि का उपयोग सामान्य बात है । असामान्य रूप में विशिष्ट प्रकार के चरु बनाये जाते हैं । खीर, हलुआ, लड्डू आदि का हवन स्विष्टकृत होम की आहुति में होता है । इन्हें किन पदार्थों के सम्मिश्रण से बनाया जाय इस निर्धारण में यह ध्यान रखना होता है कि रोगी के शरीर में किन पोषक खाद्य पदार्थों की आवश्यकता है । पूर्णाहुति में आमतौर से नारियल, सुपाड़ी आदि सुगमता पूर्वक मिल सकने वाले पदार्थ ही बहु प्रचलित हैं । पर बात इतने तक ही सीमित नहीं हो सकती, उसमें सूखे मेवे या पके फल भी प्रयुक्त हो सकते हैं । समिधाओं के निर्धारण की ही तरह पूर्णाहुति में फलों के चयन में भी सूझ-बूझ का परिचय देना पड़ता है । वसोधारा में घृत की धार छोड़ी जाती है अर्थात् उसकी मात्रा

बढ़ाई जाती है । इसका एक कारण यह भी है कि हवन कुण्ड में जहाँ–तहाँ शेष रहा कच्चा हविष्य तुरन्त ज्वलनशील हो सके । दूसरा कारण चिकनाई की वह मात्रा शरीर को मिल सके, जो सामाजिक परिस्थिति के अनुरूप आवश्यक हो रही है । शर्करा युक्त अन्न वर्ग को स्विष्टकृत में, काष्ठ वर्ग को पूर्णाहुति में, घृत वर्ग को वसोधारा में प्रयुक्त करके आहार की सन्तुलित मात्रा का रस निर्धारण किया जाता है कि यजनकर्त्ता को समुचित पोषण प्राप्त हो सके । वसोधारा घृत में कपूर केशर आदि मिलाने की भी आवश्यकता रहती है । इससे घृत, मात्र चिकनाई न रहकर एक विशिष्ट औषधि बन जाती है ।

यज्ञावशिष्ट को कई रूपों में प्रयुक्त किया जाता है । स्विष्टकृत होम से बचे हुए चरु को यजमान प्रसाद रूप में ग्रहण करते हैं । दशरथ की रानियों ने जिस चरु को सेवन करके सन्तान प्राप्त की थी वह यज्ञावशिष्ट ही था । पूर्णाहुति में प्रयुक्त होने वाले फलों में से कुछ यजमान को आशीर्वाद के प्रतीक के रूप में देते हैं और इसे घर जाकर रख लेने के लिए कहते हैं । आहुतियों में से बचा हुआ हविष्यान्न, वापसी के साथ टपका हुआ तथा वसोधारा से बचा हुआ घृत मुख, शिर आदि पर लगाने–सूँघने के लिए प्रयुक्त होता है । यह सभी यज्ञावशिष्ट हैं और स्थूल रूप में ग्रहण किए जाने पर भी प्रायः वैसे ही लाभप्रद होते हैं जैसे कि हविष्य की आहुतियों द्वारा हवन करके उत्पादित ऊर्जा द्वारा उपलब्ध होते हैं ।

धार्मिक हवन कर्त्ताओं को भी मनमानी वस्तुएँ खाते–फिरने की छूट नहीं मिलती । उस दिन उसे निर्धारित सात्विक पदार्थों पर निर्वाह करते हुए एक प्रकार से उपवास जैसे बन्धनों में प्रतिबन्धित रहना पड़ता है । विवाह यज्ञ में वर–वधू दोनों का आहार प्रायः उपवास जैसा रहता है । अन्य धार्मिक यज्ञों में भी यजमान उपवास करते हैं । याजकों के लिए भोजन सम्बन्धी प्रतिबन्ध रहते हैं और जहाँ तक सम्भव होता है वे निर्धारित द्रव्य से बना हुआ हविष्यान्न अमृतासन ही ग्रहण करते हैं । यज्ञोपचार में इस व्यवस्था पर भी ध्यान रखना पड़ता है । रोगी मात्र हवन करके ही कुछ विशिष्ट चिकित्सा पद्धति का लाभ नहीं उठा लेता वरन् उसके आहार में किन वस्तुओं का उपयोग किस मात्रा में करना है, इसका भी निर्धारण करना होता है । चिकित्सक मात्र औषधि देकर ही बात को पूरी नहीं कर देते ।

धार्मिक यज्ञों में यज्ञशाला बनाने और आच्छादित करने का विधान है । इस थोड़े से सीमा बन्धन से यज्ञीय ऊर्जा के उस घेरे में कुछ समय ठहरने

का प्रतिफल मिलता है । दूसरे उस क्षेत्र में बैठे हुए याजक दूरवर्ती लोगों की तुलना में अधिक लाभ उठा लेते हैं । खुले आकाश के नीचे हवन न करने की जो प्रथा चली आती है, उसके मूल में यही तथ्य है कि याजक थोड़े से अवरोध के कारण ऊर्जा से अधिक देर तक अधिक मात्रा में लाभ उठाते रह सकें । यज्ञशाला के "ऊपर आच्छादन रखने की परम्परा भी इसी कारण है कि ऊष्मा का स्वभाव एवं स्वरूप ऊपर उठने का है । वह अग्नि कुण्ड से निकल कर तीर की तरह छूटती है और सीधी आकाश में उड़ती चली जाती है । आच्छादन रहने से उसके ऊर्ध्वगमन पर प्रतिबन्ध लगता है और यज्ञशाला के वातावरण में उसका प्रभाव अपेक्षाकृत अधिक समय तक अधिक मात्रा में बना रहता है । पूर्व प्रतिबन्ध लगाकर बन्द कमरे में भी हवन किया जा सकता है, पर वह यज्ञ उस मूल भावना के अनुकूल नहीं होता जिसमें विश्व कल्याण के लिए त्याग-बलिदान करने के उद्देश्य को प्रधानता दी गई है । यदि अपने हवन का अकेले ही लाभ उठाया गया तो फिर वह अग्नि उपचार मात्र रह जायेगा । उसे यज्ञ के लोकोपयोगी पुनीत कर्म में न गिना जा सकेगा ।

रोगोपचार में यह आच्छादन व्यवस्था अपेक्षाकृत घनी रखी जा सकती है । यज्ञशाला के इर्द-गिर्द पर्दे लटकाये जा सकते हैं । ऐसे बन्द कमरे का भी उपयोग हो सकता है जिसमें बन्द खिड़कियाँ मौजूद हैं । बन्द कमरे में कार्बन गैस की मात्रा बढ़ जाने से हानि की संभावना रहेगी । आक्सीजन के आगमन और कार्बन के निष्कासन का क्रम तभी ठीक रहेगा जब खुलापन अधिक हो । कमरे को बन्द करके धूप, गुग्गुल, कपूर, नीम के पत्ते आदि जला देने से उसकी सीलन सड़न हटायी जा सकती है । कृमि-कीटकों से पिण्ड छुड़ाया जा सकता है, पर कार्बन और आक्सीजन गैसों का संतुलन तभी रखा जा सकता है, जब यज्ञ प्रक्रिया के लिए उपयुक्त स्थान की व्यवस्था की जाय । उपयुक्त प्रयोजनों के लिए यज्ञशाला का, यज्ञ कुण्डों का निर्माण एक विशिष्ट कौशल से विधान विज्ञान में सम्मिलित रखा गया है । यह विद्या मात्र पुरातन परम्परा नहीं है उसके पीछे उपयुक्त कारणों और प्रयोजनों का समावेश है ।

यज्ञ का यह पदार्थ परक विवेचन हुआ उससे आगे की बात अति सूक्ष्म, कारण स्तर की है । मनुष्यों की तरह पदार्थों के भी तीन स्तर होते हैं । स्थूल, सूक्ष्म और कारण । मानवीय अस्तित्व में स्थूल शरीर वह है जो रक्त-मांस से बना है । खाता, पीता, चलता, फिरता और

काम करता दीखता है । सूक्ष्म शरीर वह है जो सोचता, विचारता और शरीर पर शासन करता है । कारण शरीर वह है जिसमें आस्थाएँ, मान्यताएँ तथा आकांक्षाएँ जड़ जमाए रहती हैं । स्थूल से सूक्ष्म की और सूक्ष्म से कारण की सामर्थ्य अनेक गुना मानी जाती है । पदार्थों के सम्बन्ध में भी यही बात है । उनका स्थूल स्वरूप वह है जो दिखाई देता है स्पर्श किया जा सकता है । । सूक्ष्म वह है जिसका पता रासायनिक विश्लेषण द्वारा प्रयोगशाला में जाना जाता है । गाय की अपेक्षा भैंस के दूध में मक्खन और स्वाद दोनों अधिक होते हैं, पर महत्व गाय के दूध से बने पंचगव्य को ही दिया जाता है । तुलसी, आँवले, पीपल के पौधे की अपेक्षा दूसरे पौधे अधिक लाभप्रद, आर्थिक एवं स्वाद की दृष्टि से हो सकते हैं, पर उनमें प्राप्त सूक्ष्म संस्कारों के आधार पर उन्हें जो देवोपम श्रद्धा दी जाती है वह अन्य वृक्षों को नहीं ।

यज्ञ प्रक्रिया में प्रायः पदार्थ की कारण शक्ति को उभारा जाता है । तभी वह यजन कर्त्ता के मन और अन्तःकरण में अभीष्ट परिवर्तन ला सकती है । यदि इस प्रकार के प्रयत्न न किए जायें तो फिर यह अग्नि होत्र अपना प्रभाव वाष्पीकरण स्तर का ही दिखा सकेगा । आग जलाने से भी कई तरह के लाभ उठाये जा सकते हैं । प्रायः वैसा ही कुछ यज्ञ धूम्र भी कर सकता है । हवा की विषाक्तता दूर करने, दुर्गन्ध हटाने, सुगन्ध फैलाने जैसे सामान्य प्रयोजन उससे पूरे हो सकते हैं । पसीना निकालने, विषाणु मारने जैसे प्रयोग भी पूरे हो सकते हैं और उनका तदनुरूप आरोग्य लाभ भी मिल सकता है । पर है यह सामान्य बात ही । यज्ञ की विशिष्टता इसमें प्रयुक्त होने वाले पदार्थों की सूक्ष्म शक्ति पर निर्भर है अमुक कष्ट का अमुक संकल्प का निषेध इसी आधार पर किया जाता है कि उनकी रासायनिक संरचना उस प्रयोजन के प्रतिकूल पड़ती है जो अभीष्ट उद्देश्य की पूर्ति के लिए आवश्यक है । विधि निषेध का ऊहापोह एवं अनुशासन यज्ञों में प्रयुक्त होने वाले पदार्थों के सम्बन्ध में जुड़ा है । यह न तो निरर्थक है और न दुराग्रह । इनके पीछे यही रहस्य काम करता है कि न केवल रहस्यों को वायुभूत बनाया जाय वरन् उसकी सूक्ष्म शक्ति का भी इस विधा के सहारे आरोग्य रक्षण

जैसे अनेकों उपयोगी प्रयोजनों को पूरा किया जाय ।

कारण शक्ति का उत्पादन अभिवर्धन करने के लिए मंत्र विज्ञान का सहारा लिया जाता है । उद्गाता अध्वर्यु इस बात का पूरा-पूरा ध्यान रखते हैं कि निर्धारित विधि-विधान के लिए मंत्रों का जिस स्वर से उच्चारण एवं विनियोग करने की पद्धति प्रचलित है उसका उपयोग सही रीति से करना चाहिए, शब्द को ब्रह्म कहा गया है । उसकी शक्ति सामान्य जीवन में ज्ञान संवर्धन एवं वैचारिक आदान-प्रदान के लिए प्रयुक्त होती है किन्तु उच्चस्तरीय भूमिका में शब्द का शक्ति के रूप में परिवर्तन हो जाता है । मंत्र शास्त्र का समूचा आधार इसी पृष्ठभूमि पर खड़ा हुआ है कि शब्द गुच्छकों का चयन, गुन्थन एवं विनियोग एसी विशिष्ट क्रिया-प्रक्रिया के साथ संपन्न किया जाय कि उससे चेतना को विशिष्ट क्षमता सम्पन्न बनाने का चमत्कारी लाभ मिल सके ।

यज्ञ में नियत विधि व्यवस्था के अनुरूप मंत्रोच्चार का प्रयोग किया जाता है । इससे सम्बद्ध मनुष्यों को लाभ मिलता है । वातावरण में उपयोगी उत्तेजना उत्पन्न होती है और प्रयोग में आने वाले पदार्थों की कारण शक्ति को इतना उभारना सम्भव हो जाता है कि वे अपनी प्रभुत्व क्षमता का परिचय दे सकें । मंत्र पूत पदार्थों को आशीर्वाद रूप में देने पर वे औषधियों से भी बढ़कर काम करते हैं । इससे प्रगट है कि यजन से पूर्व हविष्य की कारण शक्ति को उभारने से उच्चस्तर तक सफलता मिल जाती है किन्तु वे वस्तु की दृष्टि से सामान्य होते हुए भी विशिष्ट शक्ति की दृष्टि से असामान्य सिद्ध हो सकें । हविष्य यदि ऐसे ही आग में झोंक दिया जाय तो इससे गंध उत्पन्न करने जैसे हल्के लाभ ही मिल सकेंगे । वैसा कुछ संभव न हो सकेगा जैसा कि यज्ञायोजनों से अपेक्षा की जाती है ।

यज्ञ पात्रों से लेकर प्रयोग में आने वाले जल तक को मंत्र के माध्यम से पवित्र बनाया जाता है । इसके उपरान्त ही उसका उपयोग होता है । समिधायें प्राप्त करने, धोने-सुखाने और प्रयोग से पूर्व अभिमंत्रित करने का विधान है । ठीक इसी प्रकार कुण्डों को प्राणवान बनाने के लिए वेदीपूजन, यज्ञशाला पूजन आदि सम्पन्न किया जाता है ।

अग्निहोत्र में ताप और ध्वनि शक्ति का सूक्ष्म प्रयोग

अग्निहोत्र यों मोटी दृष्टि से देखने में एक धार्मिक कर्मकाण्ड प्रतीत होता है और उसके लाभों में वायु शोधन, रोग-निवारण आदि को प्रमुख माना जाता है । देवताओं को प्रसन्न करने और बदले में उपयोगी वरदान पाने की मान्यता भी प्रचलित है ।

यदि इतनी-सी ही बात रही होती तो यज्ञ को भारतीय संस्कृति का आधार न माना गया होता । अन्य धर्म-कृत्यों की तरह ही उसे भी रुचि भिन्नता के आधार पर किए जाने वाले चयनों की तरह ही स्वेच्छा का विषय माना गया होता, पर देखा जाता है कि यज्ञ भारतीय तत्व-दर्शन और ज्ञान-विज्ञान के साथ अविच्छिन्न रूप से गुथा हुआ है । जन्म से लेकर मरण पर्यन्त किए जाने वाले षोडश संस्कारों में यज्ञ की अनिवार्यता है । पर्व, त्यौहारों से लेकर देव-पूजन एवं शुभ समारम्भों तक का कोई भी हर्षोत्सव यज्ञ के बिना सम्पन्न नहीं होता । होलिकोत्सव वार्षिक यज्ञ है जो सामूहिक रूप से हर गाँव, मुहल्ले में विस्तार से और घरों में वैयक्तिक रूप से छोटी विधि के साथ मनाया जाता है । राजनैतिक उद्देश्यों को लेकर किए जाने वाले अश्वमेध यज्ञ और धर्म चेतना को सुव्यवस्थित करने के लिए किए जाने वाले वाजपेय यज्ञों को बढ़ी-चढ़ी महत्ता प्रदान किए जाने से प्रतीत होता है कि भारतीय महान् परम्पराएँ यज्ञ विज्ञान के साथ गहराई के साथ जुड़ी हुई हैं ।

यज्ञ का विज्ञान पक्ष इन दिनों प्रामाणिकता के आधार पर मान्यता प्राप्त करने की स्थिति में नहीं रह गया है तो भी उसके पीछे वे आधार विद्यमान हैं जिनकी शोध की जा सके और प्रयोग परीक्षणों की सहायता से लोकोपयोगी बनाया जा सके तो उसे अध्यात्म विज्ञान की अद्भुत उपलब्धि का स्थान मिल सकता है । उसके लाभ इतने महत्वपूर्ण सिद्ध हो सकते हैं जो अन्य आविष्कारों की तुलना में कम महत्वपूर्ण सिद्ध न होंगे ।

यज्ञ के सूक्ष्म आधारों की यहाँ चर्चा न करके केवल भौतिक विज्ञान की दृष्टि से भी देखा जाय तो भी प्रतीत होगा कि ध्वनि और ताप की दोनों ही शक्तिधाराओं का उच्चस्तरीय एवं उपयोगी समन्वय किया गया है । मन्त्रोच्चार में ध्वनि विज्ञान के रहस्यमय सिद्धान्तों का समावेश किया

गया है । अग्निहोत्र प्रक्रिया को ताप शक्ति का विशिष्ट प्रयोग कहा जा सकता है । इन दोनों शक्तियों को भौतिक विज्ञान की प्रधान धारा माना गया है । इनका समन्वय करके अध्यात्म उद्देश्यों की पूर्ति के लिए उस संयुक्त शक्ति को लगा दिया जाय तो उसका सत्परिणाम वैसा ही होता है जैसा कि यज्ञ विज्ञान के जन्मदाताओं ने सुविस्तृत फलश्रुति के रूप में प्रस्तुत किया है ।

ताप की शक्ति का परिचय मनुष्य को बहुत पहले से मिल रहा है । उसकी जानकारी और उपयोगी पद्धति का अनुभव बढ़ता आया है । इस सन्दर्भ में अब तक बहुत कुछ जानकारी मिल भी चुकी है किन्तु जो जानना शेष है वह प्रस्तुत उपलब्धियों से कहीं अधिक है । घर्षण से अग्नि उत्पन्न करने और ईंधन के सहारे उसे प्रज्ज्वलित करने की विधि अब से लाखों वर्ष पूर्व मनुष्य के हाथ लग गई थी । उसके चमत्कारी प्रकटीकरण के वह नित नूतन लाभ उठाता चला आ रहा है । भोजन पकाने, सर्दी से बचने, धातु पिघलाने, कूड़ा-करकट समाप्त करने, अशक्तता में शक्ति उत्पन्न करने, प्रतिपक्षियों से जूझने, रोशनी का लाभ लेने जैसे असंख्यों उपयोग आग के हैं । यदि यह उपलब्धि हाथ में न आई होती तो आदि मानव की स्थिति से बहुत आगे बढ़ सकना सम्भव न हुआ होता ।

यज्ञ विद्या के रहस्य समझने के लिए ताप की तरह ही दूसरी प्रमुख शक्ति-ध्वनि के विज्ञान को भी जानना आवश्यक है । सर्वविदित है कि अन्य प्राणी मात्र प्रकृति हलचलों से ध्वनि उत्पन्न कर पाते हैं । छोटे जीवधारी शारीरिक हलचलों से ध्वनि उत्पन्न करते हैं और विकसित प्राणी कुछ भावनाओं को व्यक्त कर सकने योग्य थोड़ी-सी नपी-तुली अर्थहीन ध्वनियाँ कर सकते हैं । मनुष्य ही एक ऐसा है जो मुख गुहर के विभिन्न विन्यास बनाकर कितने ही प्रकार के शब्द उत्पन्न करता है और उनसे विचारों के आदान-प्रदान का, अभिव्यक्तियों के प्रकटीकरण का काम लेता है । पदार्थों में टकराव उत्पन्न करके भी उसे कितने ही तरह के संगीत, शोरगुल जैसी आवाजें पैदा करने का अनुभव है । जीभ की संरचना के अनुरूप शरीर से तथा आघातों के अभ्यास से जो ध्वनियाँ उत्पन्न की जा सकती हैं, उनमें से भी सब का अनुभव कर सकना मनुष्य के बूते की बात नहीं है । प्रकृति ने कानों की सामर्थ्य बहुत सीमित रखी है । उनसे उसी स्तर की आवाजें सुनी जा सकती हैं जो जीवन निर्वाह के लिए उपयोगी एवं आवश्यक हैं । यदि इससे अधिक सुन सकना सम्भव रहा

होता तो फिर इतनी गड़बड़ी मचती कि वर्तमान स्तर के मस्तिष्क कुछ सुन–समझ ही न पाते और कानों में घोर कुहराम मचा रहता ।

नया प्रयोग अपनी शताब्दी का यह है कि अभीष्ट प्रयोजन के लिए अभीष्ट स्तर की श्रवणातीत ध्वनियाँ उत्पन्न की जा सकती हैं और उन स्वनिर्मित कम्पनों का आश्चर्यजनक लाभ उठाया जा सकता है । ध्वनि उत्पन्न करके उसकी प्रतिध्वनि से लाभ उठाने का सिद्धान्त तो समुद्र की हलचलों का पता लगाने की विधि हाथ में आ जाने से ही विदित हो गया था, पर उसका अन्य क्षेत्रों में उपयोग कर सकने की विधियाँ अब बहुत शोध संशोधन के उपरान्त प्राप्त हुई हैं । यह प्रयोग चिकित्सा क्षेत्र में बहुत आगे बढ़े और बहुत सफल हुए हैं ।

वियना के प्रो. डसिक ने मस्तिष्क के अन्तराल में चल रही हलचलों और विकृतियों का पता लगाने के लिए श्रवणातीत ध्वनियों का सर्वप्रथम सहारा लिया था । उत्पन्न की हुई ध्वनि रोगी के मस्तिष्क में घुसी और टकराकर वापस लौटी तो उसने सारा भेद खोल कर सामने रख दिया । एक्सरे द्वारा जो भौंड़ी तस्वीरें भीतरी स्थिति की खिंचती थीं, उससे ओंधे–सीधे अनुमान ही लग पाते थे, इन श्रवणातीत ध्वनियों के विवरण कहीं अधिक स्पष्ट, विस्तृत और सही प्राप्त हुए । शोध और भी अधिक उत्साह के साथ चली । विज्ञानी लेकसल–लेजेवित हर्ष एडलामान्ट, हेगेज, डीनाल्ड जैसे मनीषियों ने न केवल मस्तिष्क का वरन् शरीर के प्रत्येक अवयव के अन्तराल की सही स्थिति समझने में श्रवणातीत ध्वनियों को माध्यम बनाया और आशातीत सफलता प्राप्त की । पोलेण्ड में तो गर्भस्थ भ्रूणों की हृदयगत धड़कन और रक्ताभिषरण की अतीव मन्दगामी स्थिति का भी सही–सही लेखा–जोखा प्राप्त कर लिया जाता है । सही निदान विदित हो जाने पर चिकित्सा में कितनी सुविधा हो सकती है इसे सहज ही समझा जा सकता है । चिकित्सा उपचार में भी उनका उपयोग किया गया और अत्यन्त गहराई में धँसे हुए रोगों को उखाड़ कर ऊपर लाना और आँख की पुतली जैसे मर्मस्थानों के अति बारीक आपरेशन कर सकना सम्भव हो गया ।

ऐसे–ऐसे अनेक आधार हैं जिनके सहारे यज्ञीय क्रियाकृत्य में उच्चारण किए गये मन्त्रोच्चार से न केवल उपयोगी ध्वनि तरंगें उत्पन्न होती वरन् उस आयोजन में सम्मिलित होने वाले लोगों को लाभदायक सत्परिणाम प्रस्तुत करती हैं, उससे भी बड़ी उपलब्धि श्रवणातीत ध्वनियों की है जो शब्द और ताप दोनों के समन्वय से उत्पन्न होती है उनसे

सुविस्तृत क्षेत्र का वातावरण प्रभावित होता है । फलतः प्राणवान मेघवर्षा से लेकर अन्यान्य कई प्रकार के ऐसे आधार खड़े होते हैं जो सर्वतोमुखी सुख-शान्ति में सहायता कर सकें । सूक्ष्म वातावरण के परिशोधन और उसके फलस्वरूप सुख-शान्ति की परिस्थितियाँ उत्पन्न करने वाले वातावरण का सृजन भी यज्ञ विद्या का अति महत्वपूर्ण प्रतिफल है । ऐसे ही कारणों को ध्यान में रखते हुए भारतीय धर्म में यज्ञ को उच्चकोटि का श्रेय सम्मान दिया गया है ।

'ब्रह्मवर्चस्' शोधों प्रयोगों में ऐसी यज्ञपैथी का विकास करना प्रधान लक्ष्य है जो शारीरिक व्याधियों, मानसिक विकृतियों एवं अवांछनीय आस्था-आकांक्षाओं में उपयोगी परिवर्तन कर सके। इसके लिए यज्ञ से संबंधित कितने ही प्रकरणों की प्रथक्-प्रथक् जाँच-पड़ताल की जायेगी । यज्ञ प्रक्रिया में (१) मंत्रोच्चार (२) समिधायें (३) हवन सामग्री (४) स्विष्टकृत के चरु हविष्य (५) पूर्णाहुति के सूखे फल (६) घृत (७) अग्नितप । यह सात प्रकरण हैं । इन सभी की सामर्थ्य एवं स्थिति को प्रथक-प्रथक भी जाना जायेगा और उनकी सम्मिलित प्रक्रिया का भी अध्ययन किया जाएगा । इसके लिए घी, लकड़ी, सामग्री आदि का रासायनिक विश्लेषण करना होगा और देखना होगा कि वायुभूत बनाये जाने के उपरान्त इन पदार्थों के स्वरूप एवं प्रभाव में क्या परिवर्तन आता है और वे याजकों पर, समीपवर्ती लोगों पर क्या प्रभाव डालते हैं ।

हव्य पदार्थ सही हों इसलिए शोध संस्थान की ऊपर वाली खुली छत पर वे सभी जड़ी बूटियाँ स्वयं उगाने की व्यवस्था की गई है जो परीक्षात्मक हवन कृत्य में प्रयुक्त होने वाली हैं । इन्हें सुरक्षित वातावरण में विशेष प्रकार से उगाने में उपयुक्त वातावरण एवं नपा-तुला खाद-पानी देने के लिए ग्लास हाउस-ग्रीन हाउस बनाये गये हैं, जिनमें पौधों का परिपोषण इस प्रकार किया जायेगा कि हवन करने के उपरान्त उनकी रासायनिक प्रतिक्रिया अभीष्ट प्रयोजन के अनुरूप हो सके । पौधों की रासायनिक स्थिति जाँचने पर ही उनमें आवश्यक सुधार उत्पन्न करने की व्यवस्था सोची जा सकती है । इस शोध के लिए प्लांट-फिजियोलॉजी से सम्बन्धित विभिन्न प्रकार के ४० उपकरण मँगाये गये हैं । जिनका उपयोग प्रस्तुत कुटी उद्यान में निरन्तर होता रहेगा ।

समिधाएँ तथा जड़ी-बूटियाँ जलाने पर गैस बनती हैं, उसका विश्लेषण करने के लिए रिफ्रेक्टोमीटर-आर. एम. वेल्यू उपकरण, सफल मरनेस

तथा विश्लेषण में प्रयुक्त होने वाले अन्य अनेकों छोटे–बड़े उपकरणों की व्यवस्था की गई है । घी की चिकनाई, रासायनिक स्थिति जाँचने के लिए एक प्रथक विभाग रखा गया है ।

मंत्रोच्चार से जो विभिन्न प्रकार की ध्वनि–तरंगें उत्पन्न होती हैं उनका प्रभाव मनुष्य के शरीर एवं मस्तिष्क पर क्या पड़ता है और वातावरण कितनी दूर तक किस प्रकार प्रभाव उत्पन्न करता है, इसकी जाँच–पड़ताल के लिए ध्वनिमापक यंत्रों के सैट लगाये गये हैं, जिसमें सोनोग्राफ, अल्ट्रासोनिक साउण्ड जैनरेटर जैसे उपकरण प्रमुख हैं । इसी प्रकार अग्निहोत्र से उत्पन्न ऊर्जा में क्या विशेषताऐं मौजूद हैं और उस गर्मी का किस पर क्या प्रभाव पड़ सकता है । उसे जाँचने के उपकरण यज्ञ के समय लगाये जाया करेंगे । इन सभी यंत्रों की व्यवस्था बन गई है ।

कुछ ऐसे उपकरण हैं जो भारत में उपलब्ध नहीं हो सके । इन्हें विदेशों से मँगाने के लिए आवश्यक धनराशि जुटाने और सरकार से अनुमति प्राप्त करने की प्रक्रिय चल रही है । ऐसे उपकरणों से इलेक्ट्रोनिक सेफोलोग्राफ प्रमुख हैं । इसमें विभिन्न प्रकार के १२ अटैचमेंट लगाने से बारह प्रकार की जाँच–पड़ताल हो सकती है । शरीर का बढ़ता तापमान, श्वांसगति, रक्त–प्रवाह, मांसपेशियों का विद्युत प्रवाह (ई. एम. जी.) मस्तिष्कीय विद्युत प्रवाह (ई. एफ. जी.) पुतलियों की हरकतें एवं नर्व कन्डक्शन जाना जा सकेगा ।

साउण्डग्रेपी के सोनोग्राफ एवं रेलीमेट्री सिस्टम भी ऐसे ही साधनों में हैं जिनके लिए विदेशों का दरवाजा खटखटाना पड़ रहा है ।

शब्द ब्रह्म और नाद ब्रह्म का माहात्म्य प्रायः सुनने को मिलता रहता है । मंत्रोच्चार और सामगान की प्राचीन परम्परा में स्वर शक्ति की प्रचण्ड विनियोग क्रिया–प्रक्रिया सम्मिलित है । आधुनिक विज्ञान के लय बद्ध स्वर संगीत के सहारे पशु–पक्षियों, जलचर तथा वृक्ष वनस्पतियों को सुविकसित करने में सफलता मिली है । विशिष्ट स्वर प्रवाह को अग्निहोत्र के सहारे विशिष्ट क्षमताओं से सम्पन्न बनाया जा सकता है । उससे वृक्ष–वनस्पतियों से लेकर अन्यान्य प्राणियों तक को उनके संतुलित विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया जा सकता है । यही मंत्र विज्ञान का लोकोपयोगी स्वरूप है । शोध संस्थान में मंत्र विद्या का नये सिरे से शोध होगा और शब्द शक्ति को अभीष्ट प्रयोजनों के लिए उपयोगी बनाने तथा उसका प्रयोग करके असाधारण प्रतिफल पाने का विषय भी ब्रह्मवर्चस

की शोध प्रक्रिया में सम्मिलित रखा गया है ।

अभी २४ कमरे की छोटी प्रयोगशाला ब्रह्मवर्चस् आरण्यक के एक कक्ष में आरम्भ की गई है । आशा की जानी चाहिए कि यज्ञ के गति शास्त्र प्रतिपादनों और आप्त वचनों की प्रामाणिकता सिद्ध करने के लिए यह शोध सिद्ध होगा । युग निर्माण में उसकी भूमिका असाधारण एवं ऐतिहासिक ही मानी जायगी ।

यज्ञ अनुष्ठान से विभिन्न प्रयोजनों की पूर्ति

विभिन्न प्रकार के हवि पदार्थों को विभिन्न विधानों और विभिन्न प्रक्रियाओं के साथ हवन करने से उनके परिणाम अलग-अलग प्रकार के होते हैं । जिस प्रकार विभिन्न रोगों की अलग-अलग औषधियाँ, परिचर्या एवं उपचार विधियाँ अलग-अलग होती हैं, उसी प्रकार अनेक प्रयोजनों के लिए यज्ञों के विनियोग भी भिन्न-भिन्न हैं । प्राचीन काल में याज्ञिक लोग उन सब विधानों की विस्तृत प्रक्रियाओं को भली प्रकार जानते थे और उनसे समुचित लाभ प्राप्त करते थे । खेद है कि आज वह वैदिक और तांत्रिक यज्ञ विद्या लुप्त प्राय हो रही है । यज्ञों के रहस्यमय विधानों के ज्ञाता अब दिखाई नहीं पड़ते । केवल उन विधानों के संकेत मात्र ही यत्र-तत्र उपलब्ध होते हैं, जिनका निर्देश नीचे किया जा रहा है । भारतीय प्राचीन विज्ञान में रुचि रखने वालों का कर्तव्य है कि इन रहस्यमय विधानों की शोध के लिए शास्त्रीय एवं वैज्ञानिक रीति से अनुसंधान करें और पूर्वजों के उस रत्न-भण्डार को जन-समाज के कल्याणार्थ सांगोपांग विधि-व्यवस्था के साथ उपस्थित करें । नीचे कुछ विधियों के अस्त-व्यस्त संकेत उपस्थित कर रहे हैं ।

घृतसक्तुमधु से किया हुआ हवन सब दुःखों को दूर करता है और व्याधियों का नाश करता है । तिलों का हवन वैभव को देता है । एक हजार आहुति देने से अत्यन्त धन-वैभव बढ़ता है । सौ आहुति से व्याधि का नाश होता है ।

सहस्रेण ज्वरो याति क्षीरेण जुह्वोतियम् ।
त्रिकालं मासयेकं तु सहस्र जुहुयात्पयः ।।
मासेन सिद्धयते तस्य महा सौभाग्यमुत्तमम् ।
सिद्धते घाब्द होमेन क्षौद्राज्यदधि संयुतम् ।।
यवक्षीराज्य होमेन जात तण्डुलकेन वा ।
प्रीयते भगवानीशो ह्यघोरः परमेश्वरः ।।

दाघ्ना प्रष्टिर्नृपाणां च क्षीर होमेन शान्तिकम् ।
षण्मासन्तुं घृतं हत्वा सर्व व्याधि विनाशनम् ।।
राजयक्ष्मा तिलैर्होमान्नश्यते वत्सरेण तु ।
यव होमेन चायुष्य घृतेन च जयस्तदा ।।
सर्व कुष्ठ क्षयार्थ च षण्मासान्नियतः सदाः ।।

–लिंग पु. अ. ४९ श्लोक ८–१३

अर्थ–एक हजार खीर की आहुतियों से ज्वर नष्ट हो जाता है । एक महीने तक तीनों कालों में खीर की सहस्र आहुतियों से हवन करना चाहिए । एक महीने में सिद्धि हो जाती है और उत्तम सौभाग्य की वृद्धि होती है ।

क्षौद्र, घी, दही, का हवन एक वर्ष करने से सिद्धि प्राप्त होती है ।

यव, खीर, घी अथवा चावलों के हवन से भगवान शंकर प्रसन्न होते हैं ।

दही का हवन करने से राजाओं की पुष्टि होती है ।

खीर का हवन शान्ति का देने वाला होता है । छः महीने तक घी का हवन करने से सब प्रकार की व्याधियों का नाश हो जाता है ।

तिलों का एक वर्ष तक हवन करने के लिए शहद से मिश्रित चावल का हवन करना चाहिए । नियमपूर्वक छः महीने तक हजार नित्य प्रति हवन करें ।

ऋषिगणों के ब्रह्म, दैव एवं अग्निहोत्र से सम्बन्ध में पूछने पर सूतजी कहते हैं–

सोमवारे च लक्ष्म्यादीन्सम्पदथ यजेद्बुधः ।
आज्यान्नेन तथा विप्रां सपत्नी कांश्च भोजयेत् ।।
काल्यादीन्भौमवारेतु यजेत् रोग प्रशान्तये ।
माष मुद्गाढ़कान्नेन ब्राह्मणांञ्चैव भोजयेत् ।।
सौम्यवारे तथा विष्णुं दध्यन्नेन यजेद्बुधः ।
पुत्र मित्र कलत्रादि पुष्टिर्भवति सर्वदा ।।
आयुष्यकामो गुरुवारो देवानां पुष्टिसिद्धये ।
उपवीतेन वस्त्रेण क्षीराज्येन यजेद्बुद्धः ।।
भोगार्थ भृगुवये तु यजेद्देवान्समाहितः ।
षड्रसोपेत्तमन्नं च दद्यात् ब्राह्मण तृप्तये ।।
स्त्रीणां च तृप्यते तद्वद्देयं वस्त्रादिकं शुभम् ।
अपमृत्यु हरे मन्दे रुद्रदीश्च यजेद् बुधः ।।
तिल होमेनदानेन तिलान्नेन च भोजयेत् ।
इत्थंयजच्च विबुधानारोग्यादि फलं लभेत् ।।

अर्थ–जो लक्ष्मी और सम्पत्ति की कामना करते हैं, उन्हें सोमवार के दिन घृतान्न का हवन करके विप्र पत्नी को खिलाना चाहिए ।।२९।। रोग की शान्ति के लिए तथा कालादि दोष निग्रह के लिए चार सेर माष (उड़द) एवं मूँग से हवन करना चाहिए तथा ब्राह्मण को खिलाना चाहिए ।।३०।। सोम, बुध, गुरु एवं शुक्र को दधि अन्न से विष्णु भगवान् को आहुति देने से पुत्र, मित्र, स्त्री आदि की परिपुष्टि होती है ।।३१।। आयु वृद्धि की कामना वाले इसकी पुष्टि और सिद्धि के लिए गुरुवार को उपवीत, वस्त्र एवं दूध तथा घृत के द्वारा देवों को आहुति प्रदान करते हैं ।।३२।। भोग की प्रवृद्धि के लिए शुक्रवार को शान्त चित्त से देवों के लिए आहुति देनी चाहिए तथा ब्राह्मणों को षट्रस पूरित भोजन कराके तृप्त करना चाहिए ।।३३।। अपमृत्यु से बचने के लिए स्त्रियों को वस्त्रादि से प्रसन्न करके रुद्रयज्ञ का अनुष्ठान करना चाहिए ।।३५।।

आयषे साज्य हविषा केवले नाथ सर्पिषा ।
इर्वात्रिकैस्तिलैर्मन्त्री जुहुयात् सहस्रकम् ।।

अर्थ–दीर्घजीवन की इच्छा करने वाला मनुष्य घृत अथवा घी युक्त खीर, इर्वा एवं तिलों से तीन हजार आहुतियाँ दें ।

शतशतं च सप्ताह्यपमृत्युं व्यपोहति ।
प्रग्गोध समिधो हुत्वा पायसं होमयेत्ततः ।।

अर्थ–वट वृक्ष की समिधाओं से प्रतिदिन सौ आहुतियाँ देने से मृत्यु का भय टल जाता है ।

रक्तानां तण्डुलानां च घृताक्तानां हुताशने ।
हुत्वा बल मवाप्नोति शत्रुभि र्नासि जीयते ।।

अर्थ–लाल चावलों को घी में मिलाकर अग्नि में हवन करने से बल की प्राप्ति होती है और शत्रुओं का क्षय होता है ।

हुत्वा करवीराणि रक्तानि ज्वाला मे ज्वरम् ।।

अर्थ–लाल कनेर के फूलों से हवन करने पर ज्वर चला जाता है ।

आमृस्य जुहुयात्पत्रैः पयोक्तैः ज्वर शान्तये ।।

अर्थ–ज्वर को शान्त करने के लिए दूध में भिगोकर आम के पत्तों का हवन करें ।

वचभिः पयसिक्ताभि क्षयं हुत्वा विनाशयेत् ।
मधु त्रितय होमेन राजयक्ष्मा विनश्यति ।।

अर्थ–दूध में वच को अभिषिक्त करके हवन करने से क्षय रोग दूर

हो जाता है । दूध, दही, घी इन तीनों को होमने से भी राजयक्ष्मा नष्ट हो जाती है ।

लता वर्वसु विवछ्य सोमत्य जुह्यातदिमा ।
सोपे सूर्पण संयुक्ते प्रयोक्ता क्षय शान्तये ।।

अर्थ–अमावस्या के दिन सपिलता की डाली से हवन करने से क्षय रोग शान्त हो जाता है ।

कुसुमैः शंख वृक्षस्य हुत्वा कुष्टं विनाशयेत ।
अपस्मार विना शस्तादपमार्गेस्य तण्डुलैः ।।

अर्थ–शंख वृक्ष के पुष्पों से होम करने से कुष्ठ (कोढ़) रोग में आराम हो जाता है । अपमार्ग के बीजों से हवन करने से अपस्सार, मृगी, हिस्टीरिया रोग विनष्ट हो जाता है ।

चन्दन द्वय संयुक्तं कर्पूर तण्डुलं पवम् ।
लवंग सुफलं चाज्यं सिता चाम्रस्य दारुके ।।
अपंन्यून विधिः प्रोक्तो गायत्र्याः प्रीतिकारक ।

अर्थ–दोनों चन्दन (रक्त और श्वेत) कर्पूर, तण्डल, यव, लवंग, नारकेल, घी, मिसरी तथा आम्र की समिधा, इसका हवन गायत्री तत्व के प्रति प्रीति कराने वाला है ।

क्षीरोदन तिलान्दुर्बा क्षीरद्रुम सापेद्वरान् ।
पृथक सहस्र त्रितपं जुह्यान मन्त्र सिद्धके ।।

अर्थ–प्रणव युक्त चौबीस लाख गायत्री जप करने के बाद उसकी सुसिद्धि के लिए दूध, भात, तिल, दूर्वा तथा बरगद, पीपल आदि दूध वाले वृक्षों की समिधाओं से तीन हजार आहुति प्रदान करे ।

सूर्य गायत्री मन्त्र से जिन वस्तुओं का हवन करने से जो भला होता है, उसका वर्णन यों मिलता है ।

सप्ररोह्मभिरादाभिर्हुत्वा आयु समाप्नुयात ।
सामेद्भिम क्षीर वृक्षस्यहुत्वा पुत्रमवाप्नुयात ।।

अर्थ–पलाश की समिधाओं से हवन करने पर आयु की वृद्धि होती है । क्षीर वृक्षों की समिधा से हवन करने से पुत्र की प्राप्ति होती है ।

ब्रीह्मिणां च शतंहुत्वा दीर्घमापुर वाप्नुयात ।
इर्वाभिपयस्य वापि मधुना सर्पिषापिवा ।।
शतं शतं सप्ताहमपमृत्यु व्यपोहति ।
शमी सपिद्भरन्तेन पयसा वा च सर्पिषा ।।

अर्थ–स्वर्णिम कमल पुष्पों से हवन करने पर मनुष्य शतजीवी होता है । इर्वा, दूध, मधु की सौ आहुतियाँ देते रहने से अकाल मृत्यु का भय नहीं रहता । शमी की समिधाओं से तथा दूध और घृत से हवन करने पर भी अपमृत्यु का भय जाता रहता है ।

कदम्ब कलिका होमाद्यक्षिणी सिध्यतिध्रुवम् ।
बन्धूक किंशुकादीनि वश्याकर्षाय होमयेत् ।।
विल्वं राज्याय लक्ष्म्यर्थ पाटलाञ्चम्पकानपि ।
पद्मानि चक्रवर्तित्वे भक्ष्य भोज्यानि सम्पदे ।।
दूर्वा व्याधिविनाशाय सर्वसत्व वशी कृतेः ।
प्रियंगु पाटली पुष्पं चूतपत्रं ज्वरान्तकम् ।।
मृत्युञ्यो मृत्यु जितस्याद् वृद्धि स्यात्तिलहो पतः ।
रुद्रशान्तिः सर्वशान्त्या अथ प्रस्तुत मुच्यते ।।

–आग्ने. पु. अ. ८१ श्लोक ४९/५२

अर्थ–कदम्ब की कलियों के हवन करने से निश्चय पूर्वक यक्षिणी सिद्ध होती है । किसी को वश में करने के लिए वन्धूक किंशुकादि का हवन करना चाहिए ।

राज्य प्राप्ति के लिए विल्व–फलों का हवन करना चाहिए ।

लक्ष्मी प्राप्ति के लिए पाटल और चम्पक का हवन करना चाहिए ।

भक्ष्यभोज्य, सम्पत्ति और चक्रवर्ती राज्य के लिए कमलों का हवन करना चाहिए ।

व्याधि नाश के लिए दूव का, सब जीवों को वश में करने के लिए पाटल पुष्पों का, ज्वर दूर करने के लिए आम के पत्तों का, अकाल मृत्यु से बचने के लिए मृत्युञ्जय मन्त्र से हवन, वृद्धि के लिए तिलों का हवन करना चाहिए । रुद्र की शान्ति करने से सबकी शान्ति हो जाती है ।

सर्वदाहोम जप्याद्यैः पाठाद्येश्च रणेजयः ।
अष्टा विंशभुजाध्येया असिखेटकवत्करौ ।।

–आग्ने. पु. अध्याय १३४

अर्थ–हमेशा हवन, जप और पाठ आदि से युद्ध में जय होती है । यज्ञ करते समय, हाथों में खंग और खेटक धारण किए अट्ठाइस भुजाओं वाली दुर्गा देवी का ध्यान चाहिए ।

श्रीगेहे विष्णु गेहे वा श्रियं पूज्यं धनं लभेत् ।
आज्याक्तै स्तण्डलै लक्षि जुहुयात्खदिरानले ।।

राजावश्यो भवेद्वृद्धिः श्रीञ्चस्यादुत्तरोत्तरम् ।
सर्षपाभ्योऽभिषेकेण नश्यते सकला ग्रहः ।।

—आ. पु. आ. ३०७ श्लोक ३, ४

अर्थ—लक्ष्मी के मन्दिर में अथवा विष्णु के मन्दिर में लक्ष्मी जी की यज्ञ से पूजा करके धन को प्राप्त करे । घी से मिले हुए चावलों से खैर की अग्नि में एक लाख हवन करने से राजा वश में होता है और उत्तरोत्तर लक्ष्मी की वृद्धि होती है ।

सरसों और पानी के अभिषेक करने से सब ग्रह नष्ट हो जाते हैं ।

संसाध्येशानमन्त्रेण तिलहोमो वशीकरः ।
जय पद्मैस्तु दुर्वाभिः शान्तिकामः पलाशजैः ।।
पुष्टि स्यात्काक पक्षेण मृतिद्वेषादिकं भवेत् ।
ग्रहक्षुद्रभयापत्तिं जर्वमेव मनुर्भवेत् ।।

—आग्ने. पु. अ. ३०७ श्लोक २०, २१

अर्थ—सिद्ध किए हुए ईशान मन्त्र से तिलों का हवन करने से सब वश में होते हैं । कमलों के हवन से जय की प्राप्ति होती है । शान्ति की कामना वाले दूब का हवन करें । पलाश के फूलों का हवन करने से पुष्टि होती है । काम पक्ष से सब दोषादिकों का अन्त होता है । क्षुद्रग्रह, भय, आपत्ति मानों सब नष्ट हो जाती हैं ।

पुष्पं क्षिपाययेच्छिश्य मानयेदग्नि कुण्डकम् ।
यवैद्धान्यस्तिलैः राज्यौ मलविद्या शतं हुनेत् ।।
स्थावरत्वं पुरा होमं सरीसृपमतः परम ।
पक्षिमृग पशुत्वं च मानुर्ष ब्राह्ममेव च ।।
विष्णुत्वञ्चेव रुद्रत्वमन्ते पूर्णाहुतिर्भवेत् ।
एकया चेवह्याहुत्या शिष्यस्यादीक्षितो भवेत् ।।
मोक्षं यतिपरं स्थानं यद्गत्वा न निवर्त्तन्ते ।
यथा जले जलं क्षिप्तं जर्लदेही शिवस्तथा ।।

अर्थ—पुष्पों को क्षेपण करावे, शिष्य से अग्नि मँगावे, यव, धान्य, तिल, घी इत्यादि के द्वारा मूल मंत्र से सौ आहुति दे ।

पहिले स्थावरों के लिए हवन करे, सरीसृपों के लिए, फिर पक्षी, मृग, पशुओं के लिए, मनुष्यों के लिए और ब्रह्म के लिए हवन करे, विष्णु के लिए, रुद्र के लिए हवन करे अन्त में पूर्णाहुति दे ।

एक ही आहुति से शिष्य दीक्षित हो जाता है । इस प्रकार वह

स्थान जो मोक्ष है, उसको प्राप्त होता है, जहाँ जाकर प्राणी लौटता नहीं । जिस प्रकार जल में जल को डालने से अलग नहीं होता, उसी प्रकार यह देही जल है और शिव भी जल रूप हैं । देही रूपी जल, शिव रूपी जल में मिलाकर पुनः नहीं लौटता ।

अग्नि गायत्री के साथ विभिन्न हव्य पदार्थों के साथ होम करने से उनके परिणाम होते हैं, वे यह हैं–

पलाशीमिरवाप्नोति समदर्भिब्रह्मा वर्चसम् ।
पलाश कुसुमैर्हुत्वा सर्वमिष्टेमवाप्नुयात् ।।

पलाश की समिधाओं से हवन करने पर ब्रह्मतेज की अभिवृद्धि होती है और पलाश के कुसुमों से हवन करने पर सभी इष्टों की सिद्धि होती है ।

यवानां लक्ष होमेन घृताक्ताये हुताशने ।
सर्वकाम समृद्धात्मा परां सिद्धिमवाप्नुयात् ।।

यवों में घी मिलाकर एक लाख बार अग्नि में आहुति देने से सब कर्मों की सिद्धि होती है तथा, परासिद्धि प्राप्त होती है ।

ब्रह्मवर्चस कामास्तु पयसा जुहुयात्तथा ।
घृत प्लुतैस्तिलैर्बीहं जुहुयात्सु समाहितं ।।

ब्रह्मतेज की कामना करने वाला व्यक्ति सावधानी के साथ, घृतयुक्त तिलों से और घी से हवन करे ।

गायत्र्युत होमञ्च सर्वपापैः प्रमुच्यते ।
पापात्मा लक्ष होमेन पातेकभ्यः प्रमुच्यते ।।

एक लाख आहुतियों से गायत्री द्वारा हवन करने से पापी मनुष्य भी बड़े से बड़े पापों से छूट जाता है ।

यज्ञ को भारतीय संस्कृति का पिता कहा गया है । पिता पालक, पोषक, संरक्षक और सब प्रकार की प्रगति में सहायक होता है । कई बार सांसारिक पिता, अज्ञान वश, प्रमाद वश बच्चों को अनुचित दिशाऐं भी दे बैठते हैं किन्तु यज्ञ प्रक्रिया मानवीय जीवन की सर्वांगीण प्रगति और सुख शान्ति का आधार सिद्ध हुआ है । उसकी इसी महत्ता ने इस देश को सर्व प्रभुता सम्पन्न बनाया । ब्रह्मवर्चस में प्रयोगशाला की स्थापना यज्ञ पिता के प्रति भ्रान्त धारणाओं को निर्मूल करना मात्र नहीं उसे मानवी सेवा की उच्च कक्षा में प्रतिष्ठित करना भी है, सो एक दिन होना भी यह सुनिश्चित है ।

मुद्रक: युग निर्माण योजना प्रेस, मथुरा